श्रीहरिः

पूज्य स्वामीजी प्रणीत— पञ्चम पुष्प

प्रवचन पीयूष

प्रवक्ता

अनन्तश्री विभूषित जगद्गुरु शङ्कराचार्य

गोवर्द्धनपीठाधीश्वर

स्वामी श्री निरंजनदेव तीर्थजी महाराज

पुरी (उड़ीसा)

સમરીતિર્ભેદાનેજા: પરબ્રહ્મ સનાતનઃ।
જયતાજ્જાનકીનાથો વેદવેદ્યો મહામતિઃ॥
ankurnagpal108@gmail.com

प्रस्तुति : धर्म संघ, कलकत्ता

प्रथम संस्करण संवत् २०४४ वि०

धर्म की जय हो—अधर्म का नाश हो।
प्राणियों में सद्भावना हो - विश्व का कल्याण हो।
गोमाता की जय हो—गोहत्या बन्द हो।
हर हर हर महादेव

प्रकाशकीय निवेदन

अनन्तकोटि ब्रह्मांडनायक की असीम असीम अनुकम्पा से प्रस्तुत प्रकाशन को आपके समक्ष उपस्थित करने का हमें सौभाग्य प्राप्त हुआ है। अनन्तश्री विभूषित जगद् गुरु शंकराचार्य पूज्य स्वामी निरंजनदेवजी तीर्थ ने संवत् २०४२ (सन् १९८५ ई०) में कलकत्ता महानगरी में चातुर्मास करने की कृपा की।

श्री अग्रसेन भवन, पी३०९ कलाकार स्ट्रीट, कलकत्ता-७ में जगद्-गुरुजी के आवास एवं नित्य प्रवचन की व्यवस्था थी। चातुर्मास की सम्पूर्ति होने के पश्चात् स्थानीय बिन्नानी भवन, ६४ पथुरियाघाट स्ट्रीट, कलकत्ता में सर्व शाखा वेद सम्मेलन, हवनात्मक सहस्रचण्डी महायज्ञ एवं अखिल भारतवर्षीय धर्मसंघ का महाधिवेशन अनुष्ठित हुए।

चातुर्मास-काल में पूज्य जगद्गुरुजी तथा उनके साथ पधारे अनेक दिव्य महात्माओं ने अनेक विध धर्म-कर्म के शास्त्रीय निरूपण की निर्मल मन्दाकिनी प्रवाहित की जिसमें भावविभोर भक्तगण अवगाहन कर कृत्य कृत्य होते रहे। सम्पूर्ण आयोजन अपने आप में एक अविस्मरणीय इतिहास बन गया।

हमारी उत्कट इच्छा थी कि पूज्य जगद्गुरुजी के प्रवचन संकलित-संपादित होकर प्रकाशित किये जावें, किन्तु आयोजन के व्यस्त कार्यक्रम में यह व्यवस्था नहीं हो सकी। प्रभु को हमारी चाह पूरी करनी थी। दण्डी स्वामी निश्चलानन्दजी द्वारा संकलित तथा सम्पादित पूज्य जगद्गुरुजी के प्रवचनों की हस्तलिखित प्रति हमें उपलब्ध हुई, जिसे हम यथावत् प्रकाशित कर रहे हैं।

'श्रेय' अर्थात् मनुष्य के 'आत्म कल्याण' के सहज शास्त्रीय प्रतिपादन के रूप में संकलित प्रवचन सारभूत सिद्धान्तों की सुबोध व्याख्या है। अकानेक प्रमाणों एवं दृष्टांतों के माध्यम से सरल भाषा में कूटस्थ सिद्धान्तों को हृदयंगम कराया गया। श्रेय-साधन की यह उत्तम नसेनी (सीढी) है।

आशा है सुधी पाठक इससे लाभान्वित होंगे।

यदि जिज्ञासु जन इस लघु प्रयास से आप्यायित होवेंगे, तो हमारा श्रम सार्थक होगा तथा भविष्य में इस कार्य के विस्तार की हमें प्रेरणा मिलेगी।

मुद्रण-सम्बन्धी त्रुटि के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

श्रीराम जयराम जय जय राम।
श्रीराम जय राम जय जय जय राम॥

સમરીતિર્હતેજાઃ પરબ્રહ્મ સનાતનઃ।
જયતાજ્જાનકીનાથો વેદવેદ્યો મહામતિઃ॥
ankurnagpal108@gmail.com

॥ श्रीहरिः ॥

प्रवचन पीयूष

अनुक्रमणिका

॥ श्री हरिः ॥

मंगलाचरण

ईश्वरो गुरुरात्मेति मूर्तिभेदविभागिने ।
व्योमवद्व्याप्तदेहाय दक्षिणामूर्तयेनमः ॥१॥

निःश्वसितमस्य वेदा वीक्षितमेतस्य पञ्चभूतानि ।
स्मितमेतस्य चराचरमस्य च सुप्तं महाप्रलयः ॥२॥

षड्भिरङ्गैरुपेताय विविधैरव्ययैरपि ।
शाश्वताय नमस्कुर्मो वेदाय च भवाय च ॥३॥

मार्तण्डतिलकस्वामिमहागणपतीन्वयम् ।
विश्ववन्द्यान्नमस्यामः सर्वसिद्धिविधायिनः ॥४॥

आचार्यकृतिनिवेशनमप्यवधूतं वचोऽस्मदादीनाम् ।
रथ्योदकमिव गङ्गाप्रवाहपातः पवित्रयति ।।५॥

वक्तारमासाद्य यमेव नित्या सरस्वतीस्वार्थसमन्विताभूत् ।
निरस्तदुस्तर्ककलङ्कपङ्का नमामि तं शङ्करमर्चिताङ्घ्रिम् ॥६॥

वागीशाद्याः सुमनसः सर्वार्थानामुपक्रमे ।
यं नत्वा कृतकृत्याः स्युस्तं नमामि गजाननम् ॥७॥

हौत्राग्नि होत्राग्नि हविष्य होतृ होमादि सर्वाकृतिभासमानम् ।
यद्ब्रह्मतद्बोधवितारिणीभ्यां नमोनमः श्रीगुरुपादुकाभ्याम् ॥८॥

कामादिसर्पव्रजगारुडाभ्यां विवेकवैराग्यनिधिप्रदाभ्याम् ।
बोधप्रदाभ्यां द्रुतमोक्षदाभ्यां नमोनमःश्रीगुरुपादुकाभ्याम् ॥९॥

(नमः श्रीपरमहंसास्वादितचरणकमलचिन्मकरन्दाय ।
भक्तजनमानसनिवासाय श्रीरामचन्द्राय ॥१०॥)

—o—

સમરીતિર્મદાતેજા: પરબ્રહ્મ સનાતન: ।
જયતાજ્જાનકીનાથો વેદવેદ્યો મહામતિ: ।।
ankurnagpal108@gmail.com

॥ श्री हरिः ॥

प्रवचन पीयूष

१—ज्ञानप्रद्गुरु और प्रेप्सित पञ्चविषय

(१) गुरुका स्वरूप और माहात्म्य :

अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायक-परात्पर-पूर्णतम-पुरुषोत्तम अखण्ड सच्चिदानन्दकन्द परब्रह्म-परमात्मा-परमेश्वर-परमपिता प्रभु के पावन चरणारविन्दोंकी प्राप्तिके लिये जन्म-जन्मान्तर, युग-युगान्तर, कल्प-कल्पान्तरके पूर्व जन्मोंके पुण्योंके उदय होनेपर जीवोंको मनुष्य शरीर मिलता है। इस मनुष्य शरीर को प्राप्त करके भगवान्के चरणारविन्दोंका आश्रय ग्रहण करने का प्रयत्न करना, यह मनुष्यमात्रका सर्वप्रथम कर्त्तव्य है।

भगवान्की प्राप्तिके लिए गुरुकी आवश्यकता होती है, गुरुके बिना भगवान् की प्राप्ति नहीं होती। भगवान्के मुखारविन्दसे निःश्वासके समान अकृत्रिम रीतिसे अभिव्यक्त अनादि-अनन्त-अपौरुषेय नित्य 'वेद' स्वयं कहते हैं—

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥

(श्वेताश्वतरोपनिषत् ६-२३)

"भगवान् में जैसी दृढ़ भक्ति भावना, प्रेम, आस्था, श्रद्धा-विश्वास निष्ठा हो ऐसी ही दृढ़ भक्ति-भावना, प्रेम-आस्था, श्रद्धा-विश्वास-निष्ठा जिस व्यक्तिकी गुरुमें होती है, उसी के प्रति महात्मा वेदान्तवेद्य भगवत्तत्त्वका उपदेश करते हैं—उसीको भगवान्की प्राप्ति होती है।"

अज्ञानान्धकार दूर करनेके कारण हम गुरुको 'गुरु' कहते हैं—

गुशब्दस्त्वन्धकारः स्याद् रुशब्दस्तन्निरोधकः।
अन्धकारनिरोधित्वाद्गुरुरित्यभिधीयते॥

(पारमात्मिकोपनिषत्; अद्वयतारकोपनिषत्)

शास्त्रोंमें गुरुको ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर और साक्षात् परब्रह्म माना गया है—

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवोमहेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परंब्रह्म तस्मै श्रीगुरवेनमः॥

(गुरुगीता, गर्गसंहिता माधुर्य ४-१-१३)

ब्रह्मा संसार की उत्पत्ति करते हैं। गुरु भी शिष्यके हृदयमें भगवत्प्राप्तिके उपयुक्त दैवी-संपत्-रूप दिव्य भावोंको उत्पन्न प्रकट अभिव्यक्त करते हैं, इसलिये 'गुरु' ब्रह्मा हैं। विष्णु संसारकी रक्षा करते हैं। गुरु भी आधि-व्याधि, परतन्त्रता, शोक, सन्ताप, दीनता, दरिद्रता, राग-द्वेष, मोह-मद, मात्सर्य, ईर्ष्या, छल, छिद्र, पाखण्ड - इन सबसे शिष्य की रक्षा करते हैं, इसलिए 'गुरु' विष्णु हैं। शंकर संसारका संहार करते हैं। गुरु भी भूतभावन शङ्करके समान हृदयमें विद्यमान अनादि अज्ञानका नाश करते हैं, इसलिए 'गुरु' शंकर हैं। 'ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति' (मुण्डक ३-२-९) आदि श्रुतियोंके अनुसार ब्रह्मवेत्ता गुरुदेव साक्षात् परब्रह्म तो होते ही हैं, भगवत्प्राप्तिके लिए ही नहीं, संसारका व्यवहार उत्तम रीति से चलानेके लिए भी प्रत्येक व्यक्तिको 'गुरु' बनाना पड़ता है। गुरु पहले शब्दोंसे ज्ञान कराते हैं, उसके बाद प्रायोगिक ज्ञान कराते हैं। किन्तु आजकलके गुरु अपने आपको भगवान् बताकर, भगवान्से भी अधिक बताकर, भगवान् का भजन-पूजन छुड़ाकर, अपना ही भजन-पूजन आदि करवाते हैं। यहाँ तक कि कुछ वेद-शास्त्रानभिज्ञ गुरुडम फैलानेवाले अज्ञानी गुरु सर्वथा मिथ्यावादी वञ्चनापटु अनर्थकारी ही हैं। ऐसे गुरु प्रायः कहा करते हैं—

गुरु गोविन्द दोनों खड़े काके लागूँ पाँय।
बलिहारी गुरुदेवकी गोविन्द दिया मिलाय॥

किन्तु उनके द्वारा दिया जानेवाला यह उपदेश इसी

प्रमाणके विरुद्ध है। यहाँ यह स्पष्ट है कि गुरुकी महिमा इसीलिए नहीं है कि उन्होंने गोविन्द को मिला दिया। फिर जो गुरु गोविन्द को ही न माने, उसकी पूजा छुड़ाये, वह 'गुरु' कैसा ?

गुरुके द्वारा नित्य-नैमित्तिक-प्रायश्चित-कर्मोंको जानकर जब व्यक्ति इनका अनुष्ठान करता है, तब जन्म-जन्मान्तरोंके पापके जो मलिन-संस्कार चित्तमें सन्निहित होते हैं, उनका नाश हो जाता है। भगवान्के चरण-कमलोंमें समर्पणपूर्वक भगवदर्थ इन कर्मोंका अनुष्ठान करनेपर पाप-वासनाकी निवृत्ति और ज्ञानेच्छाकी उत्पत्ति शीघ्र ही हो जाती है—

ज्ञानमुत्पद्यते पुंसां क्षयात् पापस्य कर्मणः।
यथाऽऽदर्शतले प्रख्ये पश्यत्यात्मानमात्मनि ॥

(महा० शान्ति० २०४-८)

"पापकर्मोंका क्षय होनेसे ही मनुष्योंके अन्तःकरणमें ज्ञान का उदय होता है, जैसे स्वच्छ दर्पणमें ही मनुष्य अपने प्रतिबिम्बको अच्छी तरह देख पाता है।"

पापकर्म जब तक नष्ट नहीं होते तबतक स्वरूपका ज्ञान नहीं होता। पानी जबतक गंदा रहेगा, तबतक आप उसमें अपने मुखका प्रतिबिम्ब नहीं देख सकते। पानी जब साफ होता है, तभी उसमें आप अपने मुखारविन्दको देख सकते हैं। जैसे दर्पण जब मैला हो — शीशा-काँच (Looking Glass) के ऊपर मैल जमा हो, तो आप अपने मुखका प्रतिबिम्ब (परछाईं) उसमें नहीं

देख सकते हैं। कपड़े आदिसे दर्पणको साफ करके निर्मल दर्पण में ही अपने मुखका प्रतिबिंब देख सकते हैं; वैसे ही मलिन अन्तःकरणमें भगवान् (ब्रह्मात्मतत्त्व) का साक्षात्कार नहीं हो सकता। कर्मोपासनासे हुए निर्मल अन्तःकरणमें ही भगवान्का साक्षात्कार हो सकता है। काम्य और निषिद्ध-कर्मोंको न करके जब व्यक्ति केवल नित्य, नैमित्तिक और प्रायश्चित-कर्मोंको भगवत्समर्पणभावसे कर्त्तव्यबुद्धिसे करता है, तब उसका अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है; अर्थात् शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधानरूप षट्-सम्पत्तिसे युक्त होता है। ऐसा व्यक्ति जब सद्गुरुके पास जाकर जब वेदान्त-शास्त्रोंका श्रवण-मनन-निदिध्यासन करता है, तब उसे भगवान्के स्वरूप और अपने अन्तरात्माका बोध होता है। अर्थात् वह ब्रह्मात्मतत्त्वके एकत्वज्ञानसे 'अनादि' अविद्याको नष्टकर निरावरण ब्रह्मात्म-भावसे अवस्थितिरूपा मुक्ति लाभ करता है—

"मुक्तिर्हित्वान्यथारूपंस्वरूपेणव्यवस्थितिः"

(भागवत २-१०-६)

जैसे कोई व्यक्ति पहले संगीत शास्त्रका खूब अभ्यास करके किसी व्यक्ति के राग-ताल-स्वरको सुने तो गान्धर्व-शास्त्रोपासनावासनावशात् उसको सुनते ही यह पता लग जाता है कि यह कौन-सा राग-ताल-स्वर गा रहा है। आप हम जो संगीत शास्त्रके जानकार नहीं हैं, बैठे बैठे खाली गाना ही सुन सकते हैं, लेकिन 'यह कौन-सा राग गा रहाहै, कौन सा ताल दे रहा है और कौन सा स्वर लगा रहा है' ऐसा नहीं

जान सकते। इसका पता तो गान्धर्व-शास्त्रके स्वाध्याय (अध्ययन और अभ्यास) से संस्कृतान्तःकरणको ही हो सकता है। उसीको षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, धैवत और निषाद पञ्चम स्वरोंका पता चल सकता है—

षड्ज ऋषभगान्धारौमध्यमोधैवतस्तथा।
पञ्चमश्चापिविज्ञेयस्तथा चापिनिषादवा
एष सप्तविधः प्रोक्तो गुण आकाशसम्भवः।
(महा० शान्ति० १८४-३६-३६)

वैसे ही वेदान्तार्थोपासनावासनावशात् 'सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीम्' (छान्दोग्यो० ६.२.१), 'सत्यंज्ञान-मनन्तं ब्रह्म यो वेद निहितं गुहायाम्' (तैतिरीयो० २.१), 'अहं ब्रह्मास्मि' (बृहदारण्यको० १.४.१०), 'तत्त्वमसि' (छा० ६ ८.७) आदि वेदान्तवाक्योंके गुरुमुखद्वारा श्रवणमात्रसे आत्माकी ब्रह्मरूपताका बोध हो सकता है, संस्कारशून्य अन्यों को नहीं।

गुरु एवं शास्त्रसे ही मनुष्यके और प्राणिमात्रके वास्तविक उद्देश्यका बोध हो सकता है। 'भगवान्‌को प्राप्ति ही मानवमात्र का लक्ष्य है'—यह आपलोग महात्माओं, सन्तों, महन्तों, योगियों, ध्यानियोंसे बराबर सुनते चले आ रहे हैं। सम्पूर्ण वेद-शास्त्र, पुराण, रामायण, महाभारत इन सबमें भी यही बतलाया गया है और वास्तवमें हम सब ही नहीं, संसारके जितने सूकर, कूकर, कीट, पतंग, देवता, दानव, मानव, यक्ष, राक्षस, किन्नर, भूत, प्रेत, पिशाच आदि चेतन जीव तथा

वृक्ष, लता, गुल्म, क्षुप, त्वक्सार, तृण जातिके जड़ जीव भी चाहते हैं ; किन्तु अनजानमें चाहते हैं।

(२) हमारी प्रेप्साके पंच विषय—

(क) पूर्णसत्ता, (ख) अखण्डबोध, (ग) परम आनन्द, (घ) पूर्ण स्वातन्त्र्य और (ङ) निरंकुश शासन।

हम सब क्या चाहते हैं ? जिन्दा रहना चाहते हैं, ज्ञान चाहते हैं, सुख चाहते हैं, सर्वतन्त्र स्वातन्त्र्य चाहते हैं और निरंकुश शासन चाहते हैं। और संसारकी जितनी वस्तुएँ हैं, वे सब वस्तुएँ भी इन पाँचोंके लिए ही चाहते हैं। पूर्ण अस्तित्व, शाश्वत सत्ता, पूर्णबोध, पूर्ण आनन्द, पूर्ण शान्ति, पूर्ण स्वातन्त्र्य एवं पूर्ण नियामकत्व भगवान्‌में ही हैं। इस प्रकार जाने-अनजाने आस्तिक-नास्तिक सभी भगवान्‌को ही चाहते हैं।

(क) पूर्णसत्ता

हम खाना खानेके लिए खाना नहीं खाते, इसलिए खाते हैं कि जीवित रहें। लोग पूछते हैं, 'क्योंजी, आप खाना क्यों खाते हो ?', आप उत्तर देते हैं—'अजी ! खाना नहीं खायेंगे तो भूखे मर जायेंगे।' इसी तरह पानी क्यों पीते हैं, इसलिए कि नहीं पीयेंगे तो प्यासे मर जायेंगे। इस तरह सारे संसारके जीव जिन्दा रहना चाहते हैं। आप कह सकते हैं कि 'सारे संसारके व्यक्ति स्त्री चाहते हैं', पर ऐसा नहीं। दो-चार वर्षका जो बालक है या पञ्चानबे वर्षका जो वृद्ध है,

उसे स्त्रीकी कोई आवश्यकता नहीं। लेकिन जिन्दा रहना तो वह भी चाहता ही है। भयंकर-से-भयंकर बीमारी हो जाय, उसके कारण कोई भले ही बैठ नहीं सके, सुन नहीं सके, देख नहीं सके पर उससे कहो—'मरना चाहते हो' तो कहेगा 'नहीं'। ऐसा असमर्थ व्यक्ति भी मरना पसन्द नहीं करता, जिन्दा रहना चाहता है। 'हम सदा बने रहें—विद्यमान रहें, हमारा अभाव कभी न हो' ऐसा प्रत्येक व्यक्ति चाहता है; अर्थात् सत्ता चाहता है।

एक दीन-हीन गरीब जंगल में जाकर लकड़ी काटकर बाजारमें उसे बेचकर परिवारका पालन-पोषण करता था। यही करते-करते उसकी सारी उम्र बीत गयी। बुढ़ापा आ गया। शरीर कमजोर हो गया, पर कुटुम्बपालन का कोई दूसरा सहारा न था; अतः उसी प्रकार जंगलमें जाकर लकड़ी काटकर लाता और शहरमें बेचता रहा। एक दिन लकड़ी कुछ अधिक इकट्ठी हो गयी। वजन ज्यादा हो गया। सिरपर रखकर चला। रास्तेमें थक-सा गया। मनमें बड़ी झुंझलाहट पैदा हुई। लकड़ीका भार नीचे रखकर बोला—'यह जीवन भी कोई जीवन है? इससे तो मौत आ जाय तो अच्छा है।' मौतने भी देखा (सोचा) कि 'मुझे तो दुनियामें कोई बुलानेवाला नहीं है। जन्म-जन्मान्तर, युग-युगान्तर, कल्प-कल्पान्तरमें एक तो बुला रहा है। जल्दी चलूँ।'

बड़ी तेजीसे मौत उसके सामने आकर खड़ी हो गयी। फिर क्या था मौतको देखते ही लकड़हारेके 'होश फाक्ता'

हो गये। घबड़ाकर बोला 'आप कौन हैं? क्यों मेरे सामने आकर खड़े हुए?'

मौतने कहा—'मैं वही हूँ, जिसे तुमने बुलाया है। अब क्या देर है, चलो।'

लकड़हारा बोला—'मैंने आपको इसलिये नहीं बुलाया; बल्कि इसलिये बुलाया है कि मुझ अकेलेसे लकड़ीका भार (गट्ठर) सिर पर उठाया नहीं जाता। कृपा करके अपनी तसरीफका टोकरा ले जाइये।'

(ख) अखण्ड बोध

हम केवल जीवित ही रहना चाहते हों, ऐसा नहीं; कुछ और भी चाहते हैं। कोई मरणासन्न व्यक्ति हो, सौभाग्यसे कोई सद्वैद्य मिल जाय। चन्द्रोदय, मकरध्वज देकर थोड़ी देरके लिए उसके प्राण सुरक्षित कर दे तो उसके घर वाले कहेंगे 'महाराज! आपकी कृपा से इनके प्राण तो बच गये। अब कृपा करके आप ऐसी दवा दें जिससे ये देखने-सुनने लगें, खाने-पीने लगें, सोचने-समझने लगें। मतलब यह कि विविध जानकारी प्राप्त कर सकें।' प्राण बच जाने पर, देखने-सुनने की योग्यता प्राप्त कर लेनेपर वह स्वयं भी विविध प्रकार को जानकारी चाहेगा। अर्थात् जीवनके साथ-साथ, सत्ता के साथ-साथ बोध (ज्ञान) सबको पसन्द है। मूर्ख रहना कोई पसन्द नहीं करता। मूर्खको भी आप 'मूर्ख' कहें तो वह सहन नहीं करेगा। स्कूल, कालेज आदि की आवश्यकता ज्ञानार्जन के

लिये ही है। कभी-कभी आश्चर्यजनक रीति से भी ज्ञानोपलब्धि हो जाती है।

अमेरिका में एक अठारह-उन्नीस साल की गूँगी लड़की थी। उसे एकबार त्रिदोष के कारण विषमज्वर (मोतीझाला, टाईफाइड) हो गया। इस रोग में व्यक्ति बड़बड़ाने लगते हैं। ज्वर बहुत बढ़ जाने पर वह गूँगी लड़की बड़बड़ाने लगी। घरवालों-बन्धु-बान्धवों को बड़ा आश्चर्य हुआ। 'क्या बोलती है' पहले तो उन्होंने इसपर ध्यान नहीं दिया। बाद में डाक्टरों को बताया कि 'यह गूँगी लड़की बोलने लग गयी। पर क्या बोलती है, समझ में नहीं आता।' डाक्टर लोग भी समझ नहीं पाये। धीरे-धीरे विद्वानों में चर्चा फैली। हम लोग तो आजकल इन सब बातों की उपेक्षा कर देते हैं, पर वे पश्चिम के विद्वान् अनुसन्धान करने लगे। अन्त में भाषाविदोंने बताया कि 'यह तो अति प्राचीन लेटिन-ग्रीक-भाषा की उत्तमोत्तम कविता बोलती है, वे विद्वान् इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि इस जन्म में तो यह पढ़ी-लिखी नहीं, किसी जन्म में इसने ग्रीक-भाषा का अध्ययन किया होगा। उसके सुप्त-प्राय संस्कार इस रोग के कारण उद्बुद्ध हो गये और यह लेटिन भाषा में बोलने लगी। इस तरह हमारे हृदय में सब प्रकार के ज्ञान विद्यमान हैं। उद्बोधक हेतुओं से वे उद्बुद्ध हो जाते हैं।

ज्ञानकी बड़ी महिमा है। जिसे व्यापार करनेकी गतिविधि का ज्ञान है, वह उसका प्रयोग कर लक्षाधीश (लखपति) बन जाता है। ज्ञानके बल पर ही सेनापति (कमाण्डर) थोड़ी-

सी सेनाके द्वारा भी विजय प्राप्त कर लेता है, अन्यथा विशाल सेना होनेपर भी जीती बाजी हार जाता है। महाभारतकी कथा है। महाराजाधिराज धर्मराज युधिष्ठिर सात अक्षौहिणी सेना होनेपर भी ग्यारह अक्षौहिणी दुर्योधनकी सेनापर विजय प्राप्त कर गये। भीष्म शर-शय्यापर आसीन हो गये। द्रोण देह त्याग कर चुके। कर्ण और शल्य भी मारे गये। अन्तमें दुर्योधन 'द्वैपायन सरोवर' में जलको स्तम्भित कर छिप गया। अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा युद्धसे पराङ्मुख हो गये। बहुत छान-बीन करनेपर भी दुर्योधनका पता नहीं चला। निराश होकर पाण्डव शिविरमें लौट आये। अन्तमें व्याधों (शिकारियों) के द्वारा भीमसेनको दुर्योधनका पता चला। पाण्डव वहाँ पहुँचे। धर्मराज युधिष्ठिरने डाँटा-फटकारा।

दुर्योधनने कहा—'मैं राज्य नहीं चाहता। तुम राज्य करो।'

धर्मराज युधिष्ठिरने कहा—'सुईकी नोकके बराबर जमीन तुम मुझे नहीं देना चाहते थे, पर सुयोधन ! आज क्या बात है कि सारा राज्य ही देनेके लिये तैयार हो। यह उदारता अपने पास रहने दो। बाहर निकलो और युद्ध करो।'

धर्मराजके ललकारने पर बेचारा दुर्योधन बाहर आया और कहने लगा कि 'तुम इतने हो और मैं अकेला हूँ, कैसे लड़ूँ ?'

युधिष्ठिरने कहा—'हम पाँचोंमें से यदि किसी एकके साथ युद्ध करके जीत जाओगे तो हम हार मान लेंगे। बताओ इससे अधिक तुम्हारे लिये हम क्या करें ?'

तब श्रीकृष्णचन्द्र परमानन्दकन्द मदनमोहन व्रजेन्द्रनन्दन ने कहा—'आपने ऐसा दाव लगाकर जीती बाजी हारने जैसी बात कर दी। ऐसा लगता है कि मानो कुन्तीके बेटोंके भाग्यमें राज्य लिखा ही नहीं है। कहीं आपसे, नकुलसे, सहदेवसे या अर्जुनसे ही गदा युद्धके लिये यह तैयार हो गया तो लेनेके देने पड़ जायेंगे। भीमसेन भी बड़ी कठिनाईसे लड़ सकेगा।'

कहनेका तात्पर्य यह है कि तनिक-सी चूक करके व्यक्ति महान् संकटमें फँस जाता है। इस तरह 'ज्ञान' हम सबका परम सहारा है। जैसे हम अनन्त-अखण्ड सत्ता चाहते हैं, वैसे ही अनन्त-अखण्ड पूर्ण ज्ञान (बोध) चाहते हैं।

(ग) परम आनन्द

अगर किसीको यह छुट्टी मिल जाय कि 'तुम जिन्दा रहोगे, कभी नहीं मरोगे, सारे संसारकी चीजोंका तुमको ज्ञान प्राप्त हो जायेगा—सर्वज्ञ बन जाओगे, पर जीवन भर बीमार रहोगे, भूखों मरोगे, तुम्हारा पुत्र मर जायगा, पिता मर जायगा, तुम्हारी पत्नी मर जायगी, तुम्हारा घर-बार बिक जायगा। बोलो, क्या तुम्हें ऐसा जीवन पसन्द होगा ?' तो वह यही कहेगा, 'नहीं-नहीं।' ऐसा क्यों ? इसलिए कि हम

जिन्दा भी रहना चाहते हैं अर्थात् सदा रहना चाहते हैं ; हर प्रकार का ज्ञान भी चाहते ; इसके साथ तीसरी वस्तु यह भी चाहते हैं कि 'सुखी' रहें। ऐसा सुख चाहते हैं कि जिसमें दुःख का लेश भी नहीं रहे, अर्थात् दुःख लेश-रहित सुख चाहते हैं। दृष्टान्त देकर बताते हैं। आपका शरीर स्वस्थ रहे, किसी प्रकार का कोई कष्ट न हो। पर नाई से नाखून कटवाते समय एक अंगुली के नाखून से जरा-सा रक्त निकल आवे, घाव पक जावे और कुलबुलाने लगे तो क्या होगा, सारे शरीर के सुख की तिलांजलि देकर आप एक अङ्ग नहीं, प्रत्यंग नहीं, उसके अवयव नहीं, प्रत्यवयवमें पीड़ाके कारण चारपाई पकड़ लेंगे। उस समय कोई गीता आदि शास्त्रों का विद्वान् यह आकर कहे कि उँगली के अग्रभागमें तनिक-सी पीड़ा है, सारा शरीर तो स्वस्थ है, फिर क्यों अधीर होते हैं ?'

उस उपदेशक विद्वान् से आप यही कहेंगे कि कृपा करो, यह शिक्षा किसी और को दो। हाँ, यदि हमारा कल्याण चाहते हो, यदि सचमुचमें तुम हमारे हितैषी हो तो इस कष्ट को मिटाने का कोई शीघ्रातिशीघ्र उपाय करो।'

संसार में दुःख अनेक प्रकारके हैं। दुःखों की कोई गिनती दुनिया में नहीं कर सकता। एटमबम, हाइड्रोजन बम, तोप, टैंक, मशीनगन, स्टेनगन, ब्रेनगन, पाईपगन बनाने वाले ; रेल, तार, रेडियो बनानेवाले ; शुक्र, मङ्गल आदि ग्रहोंपर जाने की इच्छासे राकेट बनाने वाले सर्वश्रेष्ठ, सर्वप्रेष्ठ, सर्वज्येष्ठ बुद्धिमानों की 'राउण्डटेबिल कान्फ्रेन्स' करके सारी उम्र दुःखों

की गिनती करनेका काम सौंपो, फिर भी कदाचित् ही व्यवस्थित वर्गीकरण (Classification) कर पावें, जैसा कि हमारे शास्त्रकारों ने कर रखा है।

संसारमें तीन प्रकारके दुःख हैं—(१) दैहिक (आध्यात्मिक), (२) दैविक (आधिदैविक) और (३) भौतिक (आधिभौतिक) समस्त दुःखोंका अन्तर्भाव इन तीन प्रकारके दुःखोंमें ही हो जाता है। आध्यात्मिक दुःख दो प्रकारका है—(१) शारीरिक और (२) मानसिक। शरीर (स्थूल शरीर) में वात, पित्त और कफरूप त्रिधातुओं के वैषम्यसे होनेवाले अतिसार, मन्दाग्नि, संग्रहणी, व्रण, सिरदर्द आदि बीमारियोंसे होनेवाले दुःख हैं। शरीरमें तो कोई पीड़ा-वेदना नहीं है, आरामसे बैठे हैं। उत्तमोत्तम भोजन थालीमें परोसा हुआ है, हाथ डालनेकी तैयारी है, इतनेमें नीचे से किसीने आवाज लगायी। आपने नौकरको भेजा। वह पता लगाकर आया। आपने उससे पूछा—'कौन है ?', बोला—'मेसेञ्जर।' पूछा—'क्या है ?' बोला—'तार लेकर आया है।' सोचा—'पहले तार पढ़ लें, फिर रोटी खायेंगे।' तार पढ़ा तो मालूम हुआ कि अपना कोई नजदीकी सम्बन्धी अधिक बीमार है। सारा मजा किरकिरा हो गया। मनमें चिन्ता व्याप गयी—इसीको मानसिक दुःख कहते हैं। हम जिसको नहीं चाहते हैं, वह हमें मिल जाय और जिसको चाहते हैं वह हमको नहीं मिले तो हमारा मन दुःखी होता है। इसीको मानसिक दुःख कहते हैं। इस तरह एक शरीरमें होनेवाला दुःख (व्याधि) और एक मन

में होने वाला दुःख (आधि) दोनों को 'आध्यात्मिक दुःख' कहते हैं। आध्यात्मिक शब्दमें आत्मा शरीर का वाचक है।

हमारे शरीर और मन दोनों में किसी प्रकारका दुःख नहीं, दोनों प्रकार से सुखी है। पर अति वृष्टि, अनावृष्टि, तूफान (Cyclone), अग्निकाण्ड आदि के कारण क्षतिग्रस्त होकर दुखी होना पड़े तो इसे 'आधिदैविक-दुःख' कहते हैं। बरसात नहीं बरसी, इससे अन्न पैदा नहीं हुआ या वर्षा बहुत हुई—मकान बह गया, अनाज नष्ट हो गया ; इसीलिये दुःख प्राप्त हुआ। इस प्रकार देवताओंके सम्बन्धसे प्राप्त होनेवाला दुःख 'आधिदैविक दुःख' हैं।

अभी साईक्लोन आया दो सौ किलोमीटर प्रति घण्टेकी रफ्तारसे, लाखों आदमी खत्म हो गये, हजारों मकान गिर पड़े। इस प्रकारके दुःखोंको 'आधिदैविक दुःख' कहते हैं। शास्त्रोंमें आता है—'अग्निर्देवता वातो देवता' (वा० सं० १४.२०) हम सनातन धर्मी शाप और अनुग्रह सामर्थ्य-सम्पन्न शास्त्रसिद्ध देवताओंका अस्तित्व मानते हैं। अकाट्य युक्तियोंसे उसे सिद्ध भी करते हैं।

हम रास्ता चलते हैं, कहींसे पत्थर हमारी खोपड़ीपर गिर पड़ा, उससे वेदना हुई ; किसीकी दीवाल गिर पड़नेसे चोट लगी, चलते-चलते ठोकर पैरमें लगी, भूलसे दवाके बदलेमें जहर खा लिया, आपने दवाकी शीशी भी रखी हुई है, भूलसे लगानेकी दवा जिसमें जहर पड़ा हुआ है, अपने हाथसे खा ली। उससे मरणासन्न स्थिति हो गयी ; या रास्ते

में आरामसे चल रहे हैं, किसी बैलने सींग मार दिया, हो गया काम। यह सब 'आधिभौतिक-दुःख' है। भूतोंके सम्बन्ध से, जीवोंके सम्बन्धसे, प्राणियोंके सम्बन्धसे प्राप्त 'दुःख' आधिभौतिक है।

दुःख किसको कहते हैं और सुख भी किसे कहते हैं—"प्रतिकूल वेदनीयं दुःखम्। अनुकूल वेदनीयं सुखम्।" जो वस्तु हमारे कान, हमारी त्वचा, जिह्वा आदिके प्रतिकूल लगे, अच्छी न लगे वह 'दुःख' है। जो वस्तु हमारे कान, हमारी त्वचा, जिह्वा, आँख, नासिकाको अनुकूल लगे वह 'सुख' है। जो हमारी इच्छाके प्रतिकूल है, हमारे मनके विरुद्ध है, वह 'दुःख' है और जो हमारी इच्छाके अनुकूल है, मनके अनुकूल है, वह 'सुख' है।

आजकल के नेता कहते हैं—'हम सबको सुखी बना देंगे, संसार में किसीको को दुःखी नहीं रहने देंगे।' उनकी बात सुनकर हँसी आती है। 'भाई ? सबको सुखी बनानेका आपके पास क्या उपाय है !' आप कह सकते हैं—'हम सबको रोटी दे देंगे, कपड़ा दे देंगे, मकान दे देंगे, बीमार होने पर दवा दे देंगे, मन चाही शिक्षा दे देंगे ; परन्तु इतने से भी आप सबको सुखी नहीं बना सकते। अपमानसे प्राप्त दुःख, कुरूपता आदि से प्राप्त दुःख, मृत्यु के भय से प्राप्त दुःख, सर्प-बिच्छू आदिके डसनेसे प्राप्त दुःख, पुत्रादिके न होनेसे प्राप्त दुःख, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, तूफान, भूकम्प, यानदुर्घटना, ज्वालामुखी आदिके विस्फोटसे प्राप्त दुःखसे आप कैसे मुक्त कर सकेंगे ?

इस तरह संसारमें तीन ही दुःख हैं—(१) आध्यात्मिक (२) आधिभौतिक (३) आधिदैविक। आध्यात्मिक दुःखके शारीरिक और मानसिक दो विभाग कर दें तो चार प्रकारके दुःख हो जायेंगे। हम चाहते हैं कि शरीरमें दुःखका लेश भी न हो, मनमें दुःखका लेश न हो। अधिभूत निमित्तक और अधिदैव निमित्तक दुःखका लेश न हो। इस तरह दुःख लेश-रहित सुख चाहते हैं। ऐसा भी नहीं कि एक वर्ष सुखी रहना चाहते हों, दो वर्ष, चार वर्ष, पचास वर्ष सुखी रहना चाहते हों, फिर दुःखी होना चाहते हों, सदा सर्वदा शाश्वत सुख चाहते हैं। जिस सुखको प्राप्त करनेके बाद किसी प्रकारका दुःख न हो, ऐसा चाहते हैं। दुःख क्लेश-रहित सुख प्राणिमात्र चाहता है। चाहे स्त्री हो, चाहे पुरुष हो, चाहे नपुंसक हो, चाहे गरीब हो, चाहे अमीर हो, इतना ही नहीं—चाहे देवता, दानव, मानव, यक्ष, राक्षस, किन्नर, गन्धर्व हो; चाहे कीट-पतंग हो, चाहे पेड़-पौधे-लता हो, सभी दुःख लेश-रहित सुख चाहते हैं।

संसारमें जन्मका दुख दुःसह है। आपने रूईकी गाँठे बनानेवाली मशीन देखी होगी। मशीनका एक हिस्सा ऊपरसे आता है और दूसरा नीचे से। उसमें रुई की गांठ बिलकुल टाइट हो जाती है। लोहेकी पत्तियोंसे गाँठे बन्ध जाती हैं। मशीन के दोनों पाट अलग हो जाते हैं। जोरसे धक्का लगता है और रुईकी गाँठ अपने-आप बाहर गिर जाती है। हम आप उछल-कूद तो बहुत करते हैं, लेकिन हम सभी इसी तरह

पैदा होते हैं। माँ के पेटसे निकलते समय कितना कष्ट होता है ?

इसी तरह मरते समय बहुत कष्ट होता है।

'जनमत मरत दुःसह दुःख होई' (रामचरित मा० ७-१०९-७) हजारों बिच्छू एक साथ डंक मारनेपर जैसा दुःख हो सकता है, वैसा दुःख मरनेवाले को होता है। इस समय हम आप कल्पना ही कर सकते हैं, अनुभव तो मरने वाले को ही होता है। मरते समय मल मूत्र निकल जाते हैं, असह्य वेदना होती है। कटि प्रदेश, गला, कनपटी, ब्रह्मरन्ध्र ये सब मर्मस्थान हैं। इन्हें हम चोट खानेसे बचाते हैं। प्राणवायु इन मर्मस्थानों से, जोड़ोंसे निकलते समय भयंकर कष्ट पहुँचाती है। शास्त्रकारोंने जन्म मृत्युको भयंकर दुःखप्रद माना है। जरा-व्याधिके कारण भी भीषण कष्ट होता है। एम० बी० बी० एस०, एफ० आर० सी० एस० ऊँचे-ऊँचे डाक्टर जन्म-मृत्यु, जरा-व्याधि से मुक्ति पा सकते नहीं, मुक्ति दिला सकते नहीं। बुढ़ापेसे बचनेका, मृत्यु से बचनेका क्या उपाय आप करोगे ?

दुःखं जन्म जरा दुःखं दुःखं मृत्युः पुनः पुनः।
संसारमण्डलं दुःखं पच्यन्ते यत्र जन्तवः॥

(इतिहासोपनिषत्)

जन्म-मृत्यु के समान कोई दूसरा दुःख नहीं है। बीचमें जितने दुःख हैं वे पासंग तुल्य भी नहीं हैं। जीवित रहना

सभी चाहते हैं, मरना कोई नहीं चाहता। आप कह सकते हैं कि 'यदि सभी जीवित ही रहना चाहते हैं तो कुछ लोग आत्म हत्या क्यों करते हैं ?' इसका उत्तर यह है कि 'ऐसे लोगों को भ्रम हो जाता है कि 'हम जिन्दा रहेंगे तो सुखी नहीं रहेंगे, मर जायेंगे तो सुखी हो जायेंगे।' इसलिए आत्महत्या करते हैं। लेकिन ऐसे व्यक्ति भी सोचते हैं कि अब तो अपार कष्ट हो रहा है, बचूँगा नहीं, मर जाऊँगा तब चिल्लाने लगते हैं 'बचाओ बचाओ।' बंबई में श्रीरामचन्द्र शास्त्री की कथा प्रसिद्ध है। वे करोड़पति गुजराती, मारवाड़ी समाज में बड़े ही सम्मानित थे। परम-प्रतिष्ठित-विद्वान् थे। एक बार ऐसा प्रसङ्ग आया कि मिट्टी के तेल का कनस्तर अपने हाथ से अपने ऊपर डाला और अपने हाथ से दियासलाई लगा ली। धू-धू करके जलने लगे। पड़ोसी लोग आये। जैसे-तैसे आग बुझाई, पर सारा शरीर जल गया, आँखें बाहर निकल आईं। आकृति विकृत हो गयी। हमारे श्री सीताराम शास्त्री वैद्य उनके परम मित्र थे। वे मिलने गये। श्री रामचन्द्र शास्त्री बोले 'वैद्य जी महाराज ! बचाओ, बचाओ।' हमने देखा है। एक महिलाने मरनेके लिए कुएँ में छलांग लगाई। घर में लड़ाई हो जाती है तो औरतें प्रायः ऐसा ही करती हैं। कुएँ में पानी कम था, डूबी नहीं। चिल्लाने लगी, 'बचाओ-बचाओ।', भगवान् की दया से बच गयी। इस तरह जब भ्रमवश व्यक्ति ऐसा निश्चय कर लेता है कि 'जिन्दा रहने से दुःखी हूँ, मर जाने से दुःख

दूर हो जायगा, सुखी हो जायेंगे' तब आत्महत्या में प्रीति-प्रवृत्ति होती है।

महानुभावों ने ठीक ही कहा है, 'अपने अस्तित्व में सबकी अखण्ड प्रीति स्वाभाविक होती है। आत्महत्या या असत्व में रुचि भ्रमवश होती है—

"मा न भूवं हि भूयासमिति प्रेमात्मनीक्ष्यते ।"

(पञ्चदशी १-८)

स्वासत्त्वं न कस्मैचिद्रोचते विभ्रमं विना।
अतएव श्रुतिर्बाधं ब्रूते चासत्त्व वादिनः॥"

(पञ्चदशी ३-२४)

मौत बाल्यावस्थामें भी आ सकती है। मौत किसी की प्रतीक्षा नहीं करती कि अमुक बुढ्ढा हो तभी यमराज इसे ले जायेंगे। बाल्यावस्था की कौन कहे, माँ के पेटमें से भी यमराज ले जा सकते हैं। ऐसा करनेसे कोई उन्हें रोक नहीं सकता। मरनेसे कोई किसीको बचा नहीं सकता। चिरंजीवी माने जाने वाले, अश्वत्थामा, बलि, व्यास आदि भी एक दिन अपने शरीर का त्याग करेंगे। जन्म लेने वाले का मरना ध्रुव-निश्चित है, मरने वाला यदि मुक्त नहीं हुआ तो उसका जन्म लेना भी निश्चित है—

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि॥

(भगवद्गीता २-२७)

शास्त्रों में ब्रह्माजी की आयु का वर्णन है। हमारे आपके छह महीने का देवताओं का दिन होता है और छह महीने की उनकी रात होती है। उत्तरायण देवताओं का दिन और दक्षिणायन देवताओं की रात है। दक्षिणायन में देव-सम्बन्धी शुभकार्य हमलोग इसीलिए नहीं करते हैं, क्योंकि उन दिनों देवता सोते हैं।

इस तरह हमारे आपके ३६५ दिनों का देवताओं का एक दिन और एक रात्रि मान्य है।

शुक्ल पक्ष पितरों की रात्रि है और कृष्णपक्ष पितरों का दिन है। इसीलिये श्राद्ध आश्विन-कृष्णपक्ष में आता है। कन्या संक्रान्ति के बीच के जो पन्द्रह दिन होते हैं पितर उन दिनों भोजन करते हैं। श्राद्ध अवश्य करना चाहिए। आजकल लोग उसे भी पाखण्ड बता देते हैं। हिन्दू ही नहीं संसार में कोई ऐसी जाति नहीं जो श्राद्ध न करती हो। आजकल के पढ़े-लिखे लोग जिनका दिमाग सदा सातवें आसमान में रहता है; उनको छोड़ करके चाहे मुसलमान हो, चाहे ईसाई हो, चाहे पारसी हो, चाहे बौद्ध आदि हों, सम्पूर्ण मानव जाति में श्राद्ध है।

हमारी आपकी गणना के अनुसार चार लाख बत्तीस हजार वर्ष का कलियुग होता है। अर्थात् कलियुग से १+२+३+४=१० गुणा अधिक वर्षों का एक चतुर्युग होता है। ऐसे हजार चतुर्युग का ब्रह्माजी का एक दिन और इतनी ही लम्बी रात होती है। ऐसे ३६० या ३६५ दिनों का

ब्रह्मा का एक वर्ष और १०० वर्ष की उनकी पूर्णायु मान्य है। इस तरह—४,३२,०००×१०×१०००×२×३६०× १००=३१ नील, १० खरब, ४० अरब वर्षों की श्री ब्रह्माजी की (३६० दिनों का वर्ष मानकर) आयु है; अथवा (३६५ दिनों का वर्ष मानकर) ४,३२०००×१०×१००× २×३६५×१०० = ३१ नील, ५३ खरब, ६० अरब वर्षों की श्री ब्रह्माजी की पूर्णायु है।

गीतामें ब्रह्माजीके दिन-रात्रिका उल्लेख इसी रीतिसे है—

सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः।
रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः॥
(भगवद्गीता ८-१७)

ब्रह्माजी की पूर्णायु-द्विपरार्द्ध मानी गयी है। ब्रह्माजी के एक दिन में १० मनु होते हैं। ब्रह्माजी की परमायु को 'पर' कहते हैं। उनकी आधी आयु को 'परार्द्ध' कहते हैं। इतनी लम्बी आयु वाले ब्रह्मा का भी नाश होता है। ऐसी स्थिति में जन्म-मरण से बचने का उपाय ही सबसे बड़ा उपाय है। मनुष्य शरीर इसीलिए मिलता है कि हम जन्म-मृत्यु के चक्रव्यूह से बचने का उपाय करें। यद्यपि पशु भी पैदा होते हैं और मरते हैं, कष्ट भी सहते हैं; पर भगवान् ने उन्हें यह सामर्थ्य नहीं प्रदान की है कि वे जन्म-मृत्यु जैसे भयंकर कष्टों को समझ कर, इनसे छूटने का उपाय कर सकें। यह तो मनुष्य-जीवन की विशेषता है कि वह इन कष्टों को समझकर इनसे बचने के उपायों को समझ कर,

चाहें तो, इनसे सदा के लिये मुक्ति प्राप्त कर सकता है—जन्म-मृत्यु के चक्र से छूट सकता है।

इस तरह शाश्वत जीवन, अनन्त-अखण्ड ज्ञान, दुःख-लेश-रहित सुख सभी चाहते हैं।

(घ) पूर्ण स्वातन्त्र्य

इतना ही नहीं, चौथी चीज स्वतन्त्रता भी चाहते हैं। गारन्टी मिल जाय कि जीवित रहोगे, ज्ञानी-विज्ञानी बने रहोगे, सब प्रकार के सुख-साधनों से सम्पन्न रहोगे—खानेके लिये बढ़िया से बढ़िया लड्डू, मालपुआ, समोसा, तिकोना, दालमोठ, मलाई, खीर, ये सब वस्तुएँ चाहोगे तो तत्काल मिलेंगी। पहनने के लिए टेरिलिन का सूट देंगे, बढ़िया से बढ़िया बूट दे देंगे, एयर कन्डीशन कमरे में रखेंगे, लेशमात्र भी क्लेश तुमको नहीं होने देंगे, लेकिन एक कमरे में तुमको बन्द रखेंगे, बाहर निकलने नहीं देंगे, तो क्या इतने से आप सन्तुष्ट हो जायेंगे? नहीं, क्यों? आप परन्त्रता से मुक्त होना चाहेंगे, स्वतन्त्र रहना पसन्द करेंगे। स्वतन्त्रता भी कैसी? एक पैसे भर, दो पैसे भर, एक प्रतिशत, दो प्रतिशत, निन्यानवे प्वाइन्ट निन्यानवे प्रतिशत, नहीं नहीं सेन्टपरसेन्ट-शतप्रतिशत सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र होना चाहते हैं। किसी के पराधीन नहीं रहना चाहते। मनु महाराज लिखते हैं—

सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम्।
एतद्विद्यात्समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः॥
(मनु० ४-१६)

"पराधीनता ही दुःख है। जितनी परवशता है, उतना ही दुःख है। आत्मवशता ही सुख है। जितनी आत्मवशता है, उतना ही सुख है। संक्षेप में सुखदुःखका यही लक्षण (स्वरूप) समझना चाहिये।"

गाय के बछड़े को जब दूध दुहने के समय खोलते हैं तब कितना उछलता है, कूदता है ? इसका नाम है स्वतन्त्रता।

आप लोग समझ रहे हैं हम मुक्त स्वतन्त्र हो गये। लेकिन क्या जन्म के पराधीन नहीं रहे, बुढ़ापे के पराधीन नहीं रहे, मृत्यु के पराधीन नहीं रहे ? राशन के पराधीन, पानी के पराधीन, दियासलाई के पराधीन, मिट्टी तेल और साबुन के पराधीन हैं। दूध के लिये पर्ची कटाके भिखमंगों की तरह लाइन लगाते हैं। आधि-व्याधि-शोक-संताप से घिरे हुए हैं, फिर भी कहते हैं—'हम स्वतन्त्र हो गये।' कितनी पराधीनता है ?

स्वतन्त्रता सबको अभीष्ट है। सोने-चाँदी के पिंजड़े में तोता-मैना को रखो और सोने-चाँदी के कटोरे में सेव-संतरा-अंगूर-अनार के दाने का रस पिलाओ, लेकिन उसके पिंजड़े की खिड़की यदि खुली रह जाय तो तोता-मैना नौ-दो-ग्यारह। जंगल में रहकर के चाहे भूखा मरे, चाहे प्यासा मरे, खट्टे-मीठे फल भी खाने को मिलें, न मिलें ; लेकिन सोने-चाँदी की कटोरी में सेव-संतरा-बेदाना-अनार खाना पसन्द नहीं करेगा, भूखे रहके जंगल में रहना पसन्द करेगा। इसको स्वतंत्रता कहते हैं। कितना स्वतन्त्र होना चाहते हैं ?

सर्वतंत्र-स्वतंत्र। कभी किसी प्रकार की पराधीनता हमको स्वीकार नहीं। स्वाभाविक इच्छा है हमारी स्वतंत्र रहने की। नजरबन्द किये जानेवाले को सरकार 'एयर कन्डीशन्ड' कमरा भी दे देती है, बड़े आदमियों को पन्द्रह-बीस रुपये का भोजन भी मिल जाता है। उत्तम बेड भी मिल जाता है। नौकर-चाकर भी मिल जाते हैं। चिकित्सा की सुविधा मिल जाती है। फिर भी वे अपने को पराधीन मानते हैं, स्वतन्त्रता का अनुभव नहीं करते। अतः स्वतन्त्रता सबको अभीष्ट है ही।

(ङ) निरंकुशशासन

हम जहाँ सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र रहना चाहते हैं, वहाँ यह भी चाहते हैं कि हमारा नियन्त्रण सब माने, हमारी आज्ञा का सब पालन करें। हम 'कर्तुं अकर्तुं अन्यथा कर्तुं समर्थ' होना चाहते हैं। इस सम्बन्ध में एक कथा कहते हैं। एक गृहस्थ के घर गोपालन होता था। पर्याप्त दूध होता था। पर्याप्त दही बनता था। छाछ भी खूब होती थी। पास-पड़ोस के लोगों को बड़े प्रेम से बाँटी जाती थी। घर-मालकिन एक वृद्धा थी। उसकी सहेली रोज आती। स्नेह और सम्मान पूर्वक उसे छाछ दे दी जाती। एकदिन वृद्धा मालकिन घरमें नहीं थी। कहीं बाहर चली गयी थी। उस दिन उसकी सहेली देर से आयी। तब तक बहू (पुत्रवधू) ने आने वालों को छाछ बाँट दी। घर में छाछ रही नहीं। बहू ने वृद्धा से कहा—'माताजी आज तो छाछ रही नहीं', सब बँट गयी।', वृद्धा ने कहा—'नहीं तो नहीं सही।' वह वापस जा रही थी रास्ते में घर की बुढ़िया

मालकिन मिल गयी। हम लोग (पुरुष) 'तोता चश्म' होते हैं, मतलब हो तो बात करते हैं, नहीं तो आँख, बचाकर निकल जाते हैं, परन्तु माइयाँ ऐसी नहीं होतीं। इन्हें कोई परिचित मिल जाय तो वगैर बात किये आगे बढ़ेंगी नहीं। दोनों सहेली मिलीं। बात-चीत करने लगीं।

मालकिन वृद्धा ने कहा—'कहाँ गयी थी ?'

सहेली बोली—'तेरे घर।'

वृद्धा ने पूछा—'क्यों गयी थी ?'

सहेली ने कहा—'छाछ लेने।'

वृद्धा ने कहा—'छाछ लायी कि नहीं ?'

सहेली ने कहा—'तेरे बेटे की बहू ने कहा कि आज छाछ नहीं है।'

सहेली को साथ लेकर वृद्धा घर आयी।

सहेली ने कहा—'अरी, अब तो छाछ दे ?'

वृद्धा ने कहा—'छाछ हो तब तो दूँ ? है ही नहीं, तो कहाँ से दूँ ?'

सहेली ने कहा—'तू इतनी दूर से मुझे लौटा लायी। मैंने तो पहले ही कहा था कि आज तेरे घर छाछ नहीं है।'

वृद्धा ने कहा—'घर की मालकिन मैं हूँ। भला मेरी बहू को कहाँ अधिकार है कि वह मना करे। 'ना' या 'हाँ' कहने का अधिकार तो मुझे है न ?'

इस प्रकार सभी चाहते हैं कि सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र रहें, पर आजकल सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र दीखता नहीं। अभी हमने बताया

कि कितनी पराधीनता है। कहने को स्वतन्त्र हो गये, लेकिन पराधीनता का ठिकाना नहीं। जिसका निरंकुश-शासन हो ऐसा भी कोई नहीं। जिसकी आज्ञा सारे संसार के लोग मानते हों, आज ऐसा व्यक्ति कहाँ है ?

हमें कोई (१) अमर नहीं दीखता, (२) सर्वज्ञ नहीं दीखता, (३) दुःख लेशरहित सुखी नहीं दीखता, (४ पूर्ण स्वतन्त्र नहीं दीखता और (५) जिसका निरंकुश शासन हो, ऐसा कोई सर्वनियामक नहीं दीखता। तो क्या हम यह मान लें कि ये पाँचों चीजें दुनिया में किसी के पास नहीं हैं। यदि ये पाँचों चीजें कहीं नहीं होतीं तो हम चाहते ही नहीं। अज्ञानी-से-अज्ञानी व्यक्ति भी भोजन-पानी आदि जो चीजें दुनिया में होती हैं, उसी को चाहते हैं। जो वस्तुएँ होती ही नहीं, उसे नहीं चाहते। हरिण के सींग होते हैं, लोग चाहते हैं, खरगोश के सींग नहीं होते, कोई नहीं चाहता। सभी जीव उसी को चाहते हैं जो संसार में हो। हम चूँकि इन पाँचों चीजों को चाहते हैं, इससे मालूम होता है कि ये कहीं-न-कहीं अवश्य होंगी। कहाँ हैं ? कल बतायेंगे।

श्रीराम जय राम जय जय राम।
श्रीराम जय राम जय जय राम।

—०—

२—प्रेप्सित अन्य नहीं, साक्षात् परमात्मा ही

(१) पूर्वानुकृति

'भगवान् की प्राप्ति ही मानव का लक्ष्य है' यह (ऐसा) आपलोग महात्माओं से, सन्तों से, महन्तों से, योगियों से, ध्यानियों से, ज्ञानियों से बार-बार सुनते चले आ रहे हैं। सम्पूर्ण वेद-शास्त्र, पुराण, रामायण, महाभारत इन सबमें भी यही बतलाया गया है। हम मनुष्य ही नहीं, संसार में जितने शूकर, कूकर, कीट-पतंग, देवता, दानव, मानव, यक्ष, राक्षस, किन्नर, भूत-प्रेत, पिशाच आदि चेतन जीव, वृक्ष, लता, गुल्म, क्षुप, त्वकसार, तृणजाति जड़-जीव भी भगवत्प्राप्ति ही चाहते हैं ; किन्तु अनजान में चाहते हैं।

हम आपको यही बतला रहे हैं कि हम सब क्या चाहते हैं ? बाल-वृद्ध, नर-नारी, पशु-पक्षी आदि समस्त संसार के जड़-चेतन चराचर जीव (१) जिन्दा रहना चाहते हैं, (२) ज्ञान चाहते हैं, (३) सुख चाहते हैं। संसार की जितनी वस्तुएँ हैं, वे सब वस्तुएँ भी इन पाँचों के लिये ही चाहते हैं। खाना, पीना, सोना, मकान, जमीन, जायदाद, पुत्र-पौत्र, कलत्र-मित्र इन सबको भी इसीलिये चाहते हैं कि नहीं खायेंगे, नहीं पियेंगे, नहीं सोयेंगे तो मर जायेंगे। जमीन-जायदाद अर्जित नहीं करेंगे, पुत्र-पौत्र-कलत्र-मित्रादि नहीं होंगे तो संकट-

ग्रस्त होकर मर जायेंगे। इस तरह जीना चाहते हैं। जितनी वस्तुएँ हैं उन सबको तबतक चाहते हैं, जबतक उनसे सुख मिले। बियावान निर्जन वन में मोटर का एक्सीडेन्ट हो जाय तो सारी ममता उसकी खत्म हो जाती है, उसे छोड़कर चले आते हैं। चाहे जितना बड़ा मकान हो फिर उसमें अग्नि लग जाय तो बाहर निकल आते हैं। पुत्र चाहते हैं, किन्तु तभी तक जबतक पुत्रसे सुख है। पत्नी चाहते हैं, किन्तु जबतक पत्नी से सुख मिले। इस तरह सुख चाहते हैं। स्कूल-कालेज आदि में क्यों जाते हैं, ज्ञान पाने के लिये। इस तरह ज्ञानी बनना चाहते हैं। किसी प्रकार की परतन्त्रता क्यों नहीं पसन्द करते ? स्वतन्त्र होने के लिए। इस तरह सर्वतन्त्र स्वतन्त्र होना चाहते हैं। साथ ही सबको अपने वश में क्यों रखना चाहते हैं ? निरंकुश शासन के लिये। इस तरह सर्व नियामक होना चाहते हैं।

(२) प्रेप्सा के विषय कहीं अन्यत्र चरितार्थ नहीं

संसार में जिन पाँचों वस्तुओं को चाहते हैं वे किसी एक व्यक्ति को उपलब्ध हों, ऐसा देखने में नहीं आता। शास्त्रों के अनुसार हजार-हजार वर्ष, एक-एक, दो-दो, दस-दस कल्पों तक जीने वाले व्यक्ति हैं। चार लाख बत्तीस हजार वर्ष का दसगुना एक चतुर्युग होता है। उससे हजार गुना ब्रह्माजी का दिन और उतनी ही बड़ी रात होती है। इस तरह कल्प की सन्धि सहित चौदह मन्वन्तर या एक कल्प

ब्रह्माजीके केवल दिन, दिन सौरमान या मानव वर्ष के अनुसार चार अरब, बत्तीस करोड़ वर्ष है। ब्रह्माजी के पूरे एक दिन में आठ अरब चौंसठ करोड़ मानव वर्ष सन्निहित है। आवट्य-जैगीषव्य सम्बादमें आता है कि जंगीषव्य से पूछा गया—'दस कल्पों में आपने क्या देखा?' महर्षियों को उत्तर दिया 'दस कल्पों तक मैं दुनिया में विद्यमान रहा, किन्तु सारे संसार में मुझे दुःख के सिवाय और कुछ भी दिखाई नहीं दिया।'

"दशसु महासर्गेषु भव्यत्वात् अनभिभूत बुद्धिसत्त्वेन मया नरक तिर्यग्भवं दुःखं सम्पश्यता देवमनुष्येषु पुनः पुनरुत्पद्यमानेन यत् किंचिद् अनुभूतं तत्सर्वं दुःखमेव प्रत्यवैमि।"

(व्यासभाष्य पाद ३ सूत्र १८)

महर्षि पतंजलि के शब्दों में—

परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च
दुःखमेव सर्वं विवेकिनः।

(योगदर्शन २-१५)

"परिणामदुःख, तापदुःख और संस्कारदुःख—ऐसे तीन-तीन प्रकार के दुःख सबमें विद्यमान रहने के कारण और तीनों गुणों की वृत्तियों में परस्पर विरोध होने के कारण विवेकी के लिए सब-के-सब दुखःरूप ही हैं।"

जिन चिरजीवी अश्वत्थामा, बलि, व्यास, हनुमान

विभीषण, कृपाचार्य, परशुराम और मार्कण्डेय आदि का नाम सुनते हैं; वे भी सदा जीवित रहने वाले नहीं हैं—

अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनूमांश्च विभीषणः।
कृपः परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः॥

स्पष्ट है कि जिन पाँचों वस्तुओं को हम चाहते हैं, वे संसार में कहीं नहीं हैं; पर होनो जरूर चाहिये। ये यदि नहीं होतीं तो इन्हें कोई चाहता ही नहीं।

(३) प्रेप्सित साक्षात् 'भगवान्' ही

जो दुनियाँ में वस्तु है ही नहीं, उसे हम कभी चाहते भी नहीं। इसीलिये खोजना चाहिये कि ये पाँचों वस्तुएँ कहाँ हैं? सीधे कहना पड़ेगा भगवान में हैं।

(१) भगवान अनादि-अनन्त हैं। अर्थात् सदा रहने वाले हैं। जो कभी रहे और कभी न रहे, आज है कल नहीं और कल था आज नहीं, वह अनित्य-विनाशी होता है। भगवान् पहले थे, आज हैं और आगे भविष्य में भी रहेंगे।

(२) भगवाम् ही एक ऐसे हैं जो सब कुछ जानते हैं, और कोई जीव संसार में ऐसा नहीं है, जो सब कुछ जानता हो।

(३) दुःख-लेश-रहित-सुख भी भगवान् के सिवाय और कहीं दुनियाँ में नहीं।

(४) सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र भी भगवान् के सिवाय और कोई नहीं।

निरंकुश-शासन भी उन्हीं का है और किसी का नहीं। जिसका शासन सब पर चलता हो, ऐसे भगवान् ही हैं।

भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पंचमः॥

(कठोप० २-३-३)

बड़ी-बड़ी बिल्डिगें, बड़े-बड़े कारखाने, बड़ी-बड़ी फैक्ट्रियाँ जिनमें लाखों करोड़ों-अरबों-खरबों रुपये की सम्पत्ति लोगों की सुरक्षित (सेफ) रखी रहती है, जरा-सी आग लगते ही भस्म हो जाती है। एक-दो को नहीं, सारे संसार को भस्म करने की अग्नि के अन्दर शक्ति है। किसके भय से भयभीत होकर यह संसार को जला नहीं देता? इसी तरह आप हम देखते हैं, बरसात बरसती है, बाढ़ आती है गाँव के गाँव नष्ट हो जाते हैं। यह वर्षा चाहे तो सारे संसार का प्रलय कर सकती है, पर नहीं करती, किसके भय से? भगवान् के भय से। भुवन-भास्कर सूर्य कई लाख मील की ऊँचाई पर रहते हुए भी वैशाख-ज्येष्ठ के महीने में कितना तपते हैं? थोड़ा-सा नीचे आ जाँय तो सारे संसार के जड़-चेतन जीव नष्ट हो जाँय? किसके भय से मर्यादा का पालन करते हैं, सारे संसार को अपने प्रखर ताप से संतप्त करके नष्ट नहीं कर देते? भगवान् के भय से। वज्रपाणि इन्द्र भी बरसा-विद्युत और वज्रप्रहार के द्वारा संसारको नष्ट नहीं कर देते, किसके भय से? एकमात्र भगवान् के भय से। वायु कितना बड़ा शक्तिमान है? जरा-सा तूफान आ जाता है, लाखों मर जाते हैं। आन्ध्र में एकबार

आया और आठ लाख प्राणियों की मृत्यु हो गयी। बंगलादेश पाकिस्तान में तूफान आया, दो-चार लाख क्षणमात्र में समाप्त हो गये। यदि सदैव ऐसा ही वायु चलता रहे तो संसार का कोई बच सकता नहीं। फिर किसका डर है कि वायु सदा ऐसा नहीं करता? क्या इन्दिरा गाँधी का डर है या रोनाल्ड रीगन का डर है? मात्र भगवान् का भय है। वायु का एक नाम है 'सदा गति' (सदा चलने वाला)। भगवान् के भय से यह 'सदा गति' होता हुआ भी संसार को नष्ट नहीं करता। इसी प्रकार यम जो महान् शक्तिशाली है, वह जिसको जब मारना चाहिये तभी मारता है, पहले या बाद में नहीं। किसके भय से? एकमात्र भगवान् के भय से।

सारे संसार के व्यक्ति इन पाँच वस्तुओं को चाहते हैं। इनको चाहने का अर्थ है भगवान् को चाहना। जो लोग कहते हैं—'भगवान् नहीं हैं' उनके लिये यही उत्तर है—"तुम भगवान् को नहीं मानते हुए भी भगवान् बनना चाहते हो, फिर 'भगवान् नहीं हैं' यह कैसे कहते हो?"

(१) हम सदा रहना चाहते हैं, (२) सब प्रकार का ज्ञान चाहते हैं, (३ दुःख-लेश-रहित सुख चाहते हैं, (४) सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र रहना चाहते हैं और (५) निरंकुश-शासन चाहते हैं। इसका सीधा अर्थ है—'हम भगवान् बनना चाहते हैं।', भगवान् को मानते ही नहीं तो भी भगवान् बनना क्यों चाहते हैं? 'नरो नारायणो बुभूषति' नर नारायण बनना चाहता है। आत्मा परमात्मा बनना चाहता है। जीव शिव बनना चाहता

है। चाहते तो हैं सब भगवान् को ही, किन्तु अज्ञान के वशीभूत हो करके। यह पता नहीं है कि हमारा लक्ष्य क्या है ? इन पाँचों वस्तुओं को चाहने का मतलब यही है कि सभी भगवान् को चाहते हैं। पहली युक्ति भगवान् की सत्ता में यही है। नास्तिक भगवान् को मानता नहीं, लेकिन भगवान् बनना चाहता है।

(४) अंशस्वरूप जीव के आकर्षण केन्द्र अंशी शिवस्वरूप भगवान् ही

यह स्वाभाविक स्थिति है कि अंश अपने अंशी से मिलना चाहता है। आगकी चिनगारियाँ ऊपर उछलती हैं, चाहे जितना दबाओ, उठे बिना नहीं रहेंगी। ऐसा क्यों ? इसलिये कि वे अपने अंशी सूर्य भगवान् से मिलना चाहती हैं। पानी नीचे की ओर ही क्यों बहता है ? जहाँ से आया है, वहीं जाना चाहता है। कहाँ से आता है पानी ? बादलों से। बादल कहाँ से लाते हैं पानी ? समुद्र से। एक-एक बूँद पानी को चाहे आप जितना ऊँचा फेंको, वह कहीं-न-कहीं से रास्ता निकालकर नीचे की तरफ बहेगा। नीचे की तरफ बहके कहाँ जायगा ? अन्ततोगत्वा समुद्र में जायगा। बिन्दु का अंशी है सिन्धु। बिन्दु सिन्धु में मिल जाना चाहता है। तभी उसे शान्ति प्राप्त होती है, नहीं तो कभी शान्ति प्राप्त नहीं होती। मिट्टी के घड़े की अन्त में मिट्टी में मिलकर ही समाप्ति होती है। जितने आपके नाइलोन, सिलोन आदि वस्त्र हैं,

वे सब अन्ततोगत्वा सूत, रुई, कपास, पृथ्वी में लीन हो जाना चाहते हैं। इसी प्रकार संसार में जितने जड़-चेतन पदार्थ हैं, वे सब अपने अंशी से मिलकर ही सन्तोष की साँस लेते हैं। आस्तिक हो या नास्तिक सभी जीव शिवस्वरूप भगवान् में ही लीन हो जाना चाहते हैं। भगवान् की सत्ता में यही है सबसे बड़ा प्रमाण कि भगवान् को नहीं मानने वाला भी भगवान् बनना चाहता है। ईश्वर नहीं है तो तुम ईश्वर बनना कैसे चाहते हो ? इसलिये प्राणिमात्र को भगवान् की सत्ता में विश्वास करना चाहिये। मनुष्य का पहला धर्म यही है कि वह भगवान् को जाने और माने। अन्यथा पशु में और मनुष्य में कोई भेद नहीं रहेगा।

(५) अंशी परमात्मा की विस्मृति स्वार्थ के वशीभूत होकर ही

स्वार्थ के वशीभूत होकर जीव विश्वास खो बैठता है। जब कोई व्यक्ति सबसे पहले चोरी करने के लिये जाता है, तब उसका हृदय कहता है कि 'यह बुरा काम है मत कर'; किन्तु स्वार्थ के वशीभूत होकर अन्तरात्मा के मना करने पर भी चोरी कर बैठता है। धीरे-धीरे चोरी करने की आदत पड़ जाती है, फिर स्वभाव हो जाता है चोरी करने का। इसी तरह से जितने पाप हैं, उन सबको करते समय प्रारम्भ में अन्तरात्मा मना करता है। कारण क्या है ? आत्मा सत्-स्वरूप है। उसका स्वभाव है सदा सत्-वस्तु को ग्रहण करना असद्-वस्तु को ग्रहण करना उसका स्वभाव नहीं है। छोटा

बच्चा दूध बड़े प्रेम से पीता है। चीनी या मिश्री उसके मुख में रखो, बड़े चाव से पा लेगा; किन्तु जिसने कभी नमक नहीं पाया उसके मुख में जरा-सा नमक लगाओ मुख बिचकायेगा-बिगाड़ेगा और फिर थूकना चाहेगा। इसी प्रकार कड़वी या खट्टी चीज पहले पहल मुख में डालो, कभी नहीं खाना चाहेगा। माता-पिता-स्वजन धीरे-धीरे नमक खाने का अभ्यास कराते हैं, मीठा का अभ्यास कराने की जरूरत नहीं। कारण क्या है? आत्मा आनन्द स्वरूप है। मधुर-सुखद-वस्तु को ग्रहण करना उसका स्वभाव है।

भगवान् शङ्कराचार्य लिखते हैं—'जीवो ब्रह्मैव नापरः' (योगतारावली स्तोत्र), 'जीव वस्तुतः ब्रह्म ही है, कोई अन्य नहीं।'

आत्मा स्वरूप से सच्चिदानन्द-सत्-स्वरूप, चित्-स्वरूप और आनन्द-स्वरूप है। ऐसा होने पर भी अविद्या, काम और कर्म के योग से उसमें दोष आता है।

संसारी जीव गुणार्थी होते हैं—विषय-भोगों में ही रहते हैं; वे दिव्यगुणगणनिलय-परमतत्त्व निर्गुण परमात्मा को पाने की इच्छा ही नहीं करते—

"विषयेषु च संसर्गाच्छाश्वतस्य च दर्शनात्।
मनसा चान्यदाकाङ्क्षन् परं न प्रतिपद्यते।"
"गुणान् यदिह पश्यन्ति तदिच्छन्त्यपरे जनाः।
परं नैवाभिकाङ्क्षन्ति निर्गुणत्वाद् गुणार्थिनः॥"

"गुणैर्यस्त्ववरैर्युक्तः कथं विद्यात् परान् गुणान्।
अनुमानाद्धिगन्तव्यं गुणैरवयवैः परम्॥"
(महा० शान्ति० २०६, २१-२३)

श्री वल्लभाचार्य जी कहते हैं—

"जीवाः स्वभावतो दुष्टाः……"

'जीव स्वभाव से दुष्ट हैं, सब कुछ करते हैं, पर भगवान् को नहीं भजते।'

स्वभाव का अर्थ 'स्वस्य भावः' करें तब तो अपना भाव-अपनी सत्ता-अपना स्वरूप परमात्म-स्वरूप से भिन्न कभी हो ही नहीं सकता। हाँ माया (अविद्या) के योग से जब जीव भाव आता है, तब स्वभाव सदोष माना जाता है, ऐसी स्थिति में श्री वल्लभाचार्य का कहना (कथन) सत्य हो जाता है।

आजकल लोग प्रत्यक्ष प्रमाण को सबसे ज्यादा मानते हैं। 'आत्मा अजर है, अमर है, शुद्ध-बुद्ध-मुक्त है', यह बातें हमारे आपके अनुभव से सिद्ध हैं। ऐसा आप सन्तों-महन्तों से सुनते हैं। गीता, रामायण, भागवत आदि पुराण और वेद-शास्त्रों में भी लिखा हुआ है। आत्मा माने अपने आप (अपना आपा) आत्मा कभी पैदा नहीं होता। इतने सज्जन माई, भाई बैठे हुए हैं, आप लोगों में से किसी ने अपने आप का पैदा होना देखा है? नहीं देखा है तो प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध है कि आप अजन्मा हैं। इसी तरह आत्मा अमर है। अपने

आपका मरना किसी ने देखा है ? अपने आपका बुढ़ापा भी किसी ने नहीं देखा। शरीर का बुढ़ापा देखा है, आत्मा तो अजर है। शरीर आत्मा नहीं है। शरीरों का मरना हम देखते हैं, शरीरों का ही जन्मना हम देख सकते हैं। आत्मा अजन्मा है, अजर-अमर-अविनाशी है। हम न तो बुढ़ापा चाहते हैं, न मृत्यु। इसका सीधा-सा मतलब यह है कि अजर-अमर-अविनाशी होना चाहते हैं। शरीर के जरा-मरण को अपने ऊपर मढ़कर अपने आप को वृद्ध, मरण धर्मा मानने लगते हैं। वस्तुतः शरीर आत्मा नहीं, इन्द्रिय आत्मा नहीं, मन-बुद्धि और आनन्दमय भी आत्मा नहीं।

इस तरह हम लोग जिस समय स्वार्थ के वशीभूत होकर के काम करने लगते हैं, उस समय भगवान् को भूल जाते हैं। यह सोचते नहीं कि भगवान् सब कुछ जानते हैं। चाहे कितना भी छिपकरके पाप करेंगे, वे जाने बिना नहीं रहेंगे। दो आँखों वालों को धोखा दे सकते हैं, पर जिसके हजारों आँखें हैं, उसको धोखा कहाँ दे सकते हैं ? जो कोई एक जगह रहता है, उससे आप बात छिपा सकते हैं, जो सब जगह रहता है, उससे बात कैसे छिपा सकते हैं ?

एक महात्मा के पास दो आदमी शिष्य बनने आये। महात्मा सच्चे थे। चेला बटोरने वाले नहीं थे। जो आया उसी को मूड़ लिया, सोचा 'जितना चेला आ जावें उतना ही अच्छा' ऐसा स्वभाव उनका नहीं था।

महात्मा ने कहा—'हम जिसे शिष्य बनाते हैं, उसकी

परीक्षा पहले करते हैं। परीक्षा में पास हो जाय तभी हम शिष्य बनाते हैं।'

उन दो व्यक्तियों ने कहा—'परीक्षा ले लो महाराज !'

महात्मा ने दोनों आदमियों को एक-एक कबूतर देकर कहा—'जाओ ! जहाँ कोई नहीं देखे, वहाँ इसको मार करके ले आओ।'

उन दोनों में एक आदमी कुछ दूर गया। इधर-उधर देखा, सोचा इस जगह अंधेरा है कोई देखता नहीं। चट चाकू कबूतर की गर्दन पर मार करके महात्माजी के पास लाकर बोला—'लो महाराज !'

महात्माजी बोले—'अरे भाई हमने कहा था जहाँ कोई नहीं देखे, वहाँ मारकर लाना।'

पहला आदमी बोला—'हाँ वहीं मारकर लाया हूँ। मुझे किसी ने नहीं देखा। अब मैं आपकी परीक्षा में पास हो गया।'

महात्मा ने कहा—'नहीं भैया ! रिजल्ट आउट तो करेंगे जब दूसरे साथी की भी परीक्षा हो जाय।'

दूसरा साथी एक-दो दिन नहीं, एक-दो महीना नहीं, पूरे बारह महीने भटका पर कहीं मारने के उपयुक्त स्थल नहीं पाया। उसने कबूतर को भूखा-प्यासा भी नहीं रखा। खिला-पिलाकर हृष्ट-पुष्ट, हट्टा-कट्टा बना करके महात्माजी के

चरणों में लाकर के रख दिया। बोला—"महाराज यह है आपका कबूतर।"

महात्माजी ने कहा—'क्यों भाई! क्या हुआ? तेरा साथी तो तभी काम करके आ गया और तुमको बारह महीने हो गये।"

दूसरे व्यक्ति ने कहा—"महाराज! आपने आज्ञा दी कि जहाँ कोई नहीं देखे वहाँ मारना। मैं बड़ी-बड़ी एकान्त जगह में गया। चारों तरफ खूब देखा, पर करता क्या? दिन में भगवान् आदित्य (सूर्य) देख रहे थे। रात्रि में चन्द्र देख रहे थे। अमावस की रात में हजारों-लाखों-अरबों-खरबों अगणित तारे देख रहे थे। उस समय किस तरह मारता? ये अग्निदेव जो कि मेरे शरीर के अन्दर भी हैं, इनके देखते-देखते मैं इस कबूतर को कैसे मारता? अन्ततोगत्वा मैंने बहुत कुछ किया, सोचा-समझा—'अब तो कोई नहीं देखता', किन्तु मेरे मन में यह बात आयी कि गुरुजी की आज्ञा है 'जहाँ कोई नहीं देखे, वहाँ मारना' पर मैं ही इसे देख रहा हूँ, फिर कैसे मारूँ?' इस तरह महाराज! "मुझे ऐसी जगह कहीं नहीं मिली, जहाँ कोई नहीं देखे।"

"अहोरात्रं विजानाति ऋतवश्चापि नित्यशः।
पुरुषे पापकं कर्म शुभं वा शुभकर्मिणः॥"

(महा० अनुशासन० ४३-१०)

"पापी में जो पापकर्म है और शुभकर्मी में जो शुभकर्म है, उन सबको दिन-रात और ऋतुएँ सदा जानती रहती हैं।"

"पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिर्मनोऽन्तकः।
बुद्धिरात्मा च सहिता धर्मं पश्यन्ति नित्यदा॥"

(महा० अनुशासन० १०६-२१, २१½)

"पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, यम, बुद्धि और आत्मा—ये सब सदा एक साथ मनुष्य के धर्म पर दृष्टि रखते हैं।"

गुरुजी ने कहा—"तुम पास और वह फेल। तुमको चेला बना सकते हैं।"

इस तरह लोग स्वार्थ के वशीभूत होकर के भगवान् की सत्ता को भूल जाते हैं। 'भगवान् सर्वत्र विद्यमान हैं' इस बात को भूल जाते हैं। भगवान् के द्वारा छोड़े गये गुप्तचर विभाग (सी० आई० डी० डिपार्टमेन्ट) के सबसे बड़े अधिकारी (ऑफीसर) यमराज हैं। उनके प्रधान मन्त्री चित्रगुप्त हैं। 'चित्रगुप्त' यह सार्थक शब्द है। गुप्त-से-गुप्त कर्मों का भी जो चित्र लेता हो, उसे चित्रगुप्त कहते हैं। आप गुप्त-से-गुप्त भी कोई काम करोगे तो वह चित्र तो लेगा—फोटो खींच लेगा। चाहे जितना छिपकर कोई पाप करे, जब मरकर वह यमराज के यहाँ पहुँचाया जाता है, तब वे पूछते हैं—'भैया तुमने चोरी की?' उसके मना करते ही चित्रगुप्त 'एलबम' खोलकर दिखाते हुए कहते हैं कि 'देखो तुम्हारा यह चित्र है, अब कैसे मना करोगे?' सुनो—सी० आई० डी० की आँखों में धूल भले ही झोंक दो, पुलिस को चकमा दे दो, मजिस्ट्रेट को 'गोविन्दाय नमोनमः' करके उसकी बुद्धि फेरकर अपने

अनुकूल फैसला करा लो, अच्छे-से-अच्छे वकील करके मुकद्दमा जीत जाओ, लेकिन अन्ततोगत्वा भगवान् के यहाँ न्याय होगा। वहाँ दण्डित अवश्य होओगे।

नागपुर में हमारे गुरुदेव अनन्तश्री भारतीकृष्णतीर्थजी महाराज के भक्त पैसे वाले थे। उन्होंने अपने पुत्र को गोली मार दी। मुकद्दमा चला। काफी खर्च किया। पहले कोर्ट में हारे। फिर हाईकोर्ट में मुकद्दमा से बरी हो गये। फैसला सुनकर आये। प्रसन्न होना चाहिये था, पर बहुत ही दुःखी थे। सगे-सम्बन्धी माला पहनाने को तैयार, जय-जयकार करने को तैयार, पर वे कुछ नहीं बोले। हमारे गुरुदेव जो कि उन दिनों नागपुर में ही ठहरे हुए थे सीधे उनके पास पहुँचे। दस मिनट तक रोते रहे, फिर बड़ी मुश्किल से अवरुद्ध कण्ठ से बोले—'महाराज ! हाईकोर्ट से बरी हो गया, किन्तु भगवान् के कोर्ट से तो बरी नहीं हो सकता ? मेरा अन्तरात्मा कहता है कि मैंने अपने पुत्र की हत्या की है। यहाँ अगर मैं बरी नहीं होता—दण्ड ले लेता तो यमराज के दण्ड से छूट जाता। यहाँ मुझे दण्ड नहीं मिला, इसलिये भगवान् के दरबार में अवश्य दण्ड मिलेगा।''

अन्ततोगत्वा दुःख से बीमार होकर मर गये। अधेड़ थे—कुल पचास वर्ष की आयु थी।

(६) ईश्वर-सिद्धि में सर्वप्रथम युक्ति—'निज अस्तित्व की स्वीकृति-आत्मस्वरूप अन्तर्यामी की स्वीकृति'

जो लोग कहते हैं—'आत्मा नहीं है, परमात्मा नहीं है,

भगवान् नहीं है।' जरा उनसे पूछो—'भाई ! हृदय पर हाथ रखकर कहो कि तुम हो या नहीं ?' अपने आपके लिये तो कोई यह नहीं कह सकता कि मैं नहीं हूँ'। जब अपने अस्तित्व की स्वीकृति आत्मा की ही स्वीकृति है आत्मा ही परमात्मा है, तब परमात्मा की सत्ता से कैसे इन्कार किया जा सकता है ?

(७) व्यवस्थित सृष्टि जिसकी कृति वह ईश्वर स्वतः सिद्ध ही

एक बात और है, इस संसार में जितने भी पदार्थ आप देख रहे हैं, उन सबका बनाने वाला कोई-न-कोई अवश्य है। कपड़े का बनाने वाला जुलाहा है। घड़े का बनाने वाला कुम्हार (कुलाल) है। सोने-चाँदी के जेवरों को बनाने वाला सुनार है। लकड़ी के जितने 'फर्नीचर' हैं, उन सबको बनाने वाला 'कारपेन्टर' बढ़ई है। सभी प्रकार की मशीनों को बनाने वाले, सात-सात और सत्ताईस-सत्ताईस मञ्जिल की बिल्डिगों (इमारतों) को बनाने वाले इंजीनियर-कारीगर-मिस्त्री हैं। ये दरवाजे, ट्यूब, पंखा आदि जितनी वस्तुएँ आप देख रहे हैं वे किसी-न-किसी के द्वारा बनाई हुई हैं। ऐसी स्थिति में पृथ्वी-पर्वत, नद-निर्झर, सूर्य-चन्द्र, वायु आदि वस्तुओं को अर्थात् सम्पूर्ण संसारको बनाने वाला कोई-न-कोई अवश्य होना चाहिये। सम्पूर्ण जगत् के निर्माण करने वाले को ही 'भगवान्' कहते हैं।

जिन चीजों के बनाने वाले को हम जानते हैं, उनके बारे

में आस्तिक और नास्तिक का कोई विवाद नहीं है ; 'घड़े का बनाने वाला कुम्भकार (कुम्हार) है, कपड़े का बनाने वाला जुलाहा है, लोहे के पदार्थों को बनाने वाला लुहार है, जेवर का बनाने वाला सुनार है, ऐसा अस्तिक-नास्तिक सभी मानते हैं। जिन चीजों के बनाने वाले को हम नहीं जानते हैं, उनके बारे में आस्तिक और नास्तिक में विवाद (झगड़ा) है। किन्तु पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश के बनाने वाले को हम नहीं देख पाते—प्रत्यक्ष प्रमाण से नहीं जान पाते, तो इनके बनाने वाले के बारे में विवाद है। नास्तिक (भगवान् को न मानने वाले, वेदादि शास्त्रों के प्रमाण को स्वीकार न करने वाले) कहते हैं, भूधर (पर्वत), सागर, सूर्य-चन्द्र, वायु, गगन (आकाश) को बनाने वाला कोई नहीं है, हम कहते हैं इनका बनाने वाला भगवान् (ईश्वर) है। 'पृथ्वी का बनाने वाला कोई नहीं है, नदियों का बनाने वाला कोई नहीं है।' ऐसा कहना गलत है ; क्योंकि इनके बनाने वाले की ही तो खोज करनी है ? 'इनको बनाने बाला कोई नहीं है' ; ऐसा सिद्ध करने के लिये आपके पास कोई दृष्टान्त नहीं है।

जबकि "इनको बनाने वाला भगवान् है" ऐसा कहने वाले हमलोगों के पास "जैसे घड़े को बनाने वाला कुम्हार है" यह दृष्टान्त है, "वैसे संसार को बनाने वाला कोई नहीं है", ऐसा कहने वाले के पास कोई दृष्टान्त नहीं है। क्योंकि भूधर, सागर, गगन, पर्वत आदि को नास्तिक दृष्टान्त नहीं कह सकता, क्योंकि ये सब तो संसार के अन्दर आ जाने के कारण

पक्ष ही हैं। इनके बनाने वाले की तो खोज है ; अतः ये दृष्टान्त नहीं हो सकते।

एक बाबू साहब भगवान् को नहीं मानते थे। उनके घर में जो उनका पुत्र पैदा हुआ वह बड़ा भक्त था। वह भगवान् के भजन में आध-पौन घण्टा रोज लगाता था। वह यह भी जानता था कि 'मेरे पिताजी भगवान् को नहीं मानते हैं। उनको किसी तरह पता चल जायगा कि मैं भगवान् की भक्ति करता हूँ' तो मुझ पर जरूर नाराज हो जायेंगे, इसीलिये भजन तो करता था, लेकिन अपने पिता से इस बात को छिपाता था। एकबार ऐसी घटना घटी कि भजन करते-करते वह तल्लीन हो गया, कुछ समय ज्यादा लग गया। भगवान् की भक्ति में उसको इस बात का ध्यान नहीं रहा कि विद्यालय जाने का समय हो गया। देरी हो गयी। विद्यालय में लेट पहुँचा। मासिक फीस चुकाने का समय आया। उसके साथ फाइन भी चुकाना था। उसने पिताजी से फीस के साथ-साथ फाइन के भी पैसे माँगे। पिताजी ने कहा—"तुम तो सदा समय पर पहुँचने वाले 'रेगुलर स्टुडेण्ट' हो ; तुम्हारे ऊपर जुर्माना क्यों हो गया ?"

बालक कहने लगा—'मैं एक दिन लेट गया, इसलिये।'

बाबूसाहब का दिमाग अपटुडेट लोगों का दिमाग-जैसा तर्क करने वाला होता है, वैसा ही था। उन्होंने पूछा—'देर क्यों हो गयी।'

बालक भगवान् का भक्त था। झूठ कैसे बोल सकता था? जो भगवान् का भक्त होता है, असद् व्यवहार में उसकी प्रीति-प्रवृत्ति होती नहीं। बालक के मन में आया - 'अब तो पिताजी नाराज जरूर होंगे, फिर भी बताना तो सच-सच ही चाहिए।'

उसने कहा—'पिताजी! प्रतिदिन भगवान् का भजन करता हूँ। एक दिन भजन में मेरा मन इतना लग गया कि मुझे समय का ध्यान नहीं रहा, उस दिन मैं कालेज देर से गया। इसीलिये मेरे ऊपर 'फाइन'' हो गया।'

बाबूसाहब बिगड़ पड़े—'बेवकूफ, गधा कहीं का! हाई-स्कूल पास करके कालेज में चला गया; किन्तु भगवान् की 'बू' तेरे दिमाग से नहीं निकली। कहाँ है भगवान्? तैंने देखा है क्या? सवेरे-सवेरे भजन करता है। समय व्यर्थ व्यय करता है। 'भगवान्-भगवान्' यह सब पाखण्ड है। भगवान् कोई अफीम की गोली है कि उसके भजन में तुझे समय का पता तक नहीं चला? तू कालेज लेट पहुँचा। खबरदार कल से यदि तैंने भगवान् के नाम पर एक सेकेण्ड भी खोया!'

बालक ने सोचा —'इस समय इनसे बिगाड़ करना व्यर्थ है। भगवान् से प्रार्थना करेंगे, वही कोई युक्ति बतायेंगे तो इन्हें समझायेंगे।

उसने पिताजी से कहा—'मैंने भूल की। आगे से सावधान रहूँगा। देरी नहीं होगी।'

बाबूजी ने पैसे दे दिये। वह कालेज में जाकर जमा कर आया। भक्त था भगवान् का। पिताजी की बातें उसे काँटे की तरह चुभ रही थीं। सोचने लगा—'पिताजी कहते हैं कि भगवान् नहीं है।' किसी तरह पिताजी को 'भगवान् है' यह समझा सकूँ।

भगवान् के भक्त के हृदय में भगवान् ही इस प्रकार की बुद्धि प्रदान करते हैं। उसने एक सुन्दर चित्र बनाया। भारत का नक्शा उसने तैयार किया। बड़े सुन्दर-सुन्दर उसमें रंग भरे। इतना सुन्दर बनाया कि उसे देखते ही मन प्रसन्न हो जाय। पिताजी के आफिस लौटकर आने के पहले ही उसने उनकी टेबिल पर काँच के नीचे उसे व्यवस्थित रख दिया। पिता जी आये। आकर उन्होंने उस चित्र को देखा। सोचने लगे—'बड़ा सुन्दर है नक्शा। किसने बनाया है?', घर के और लोगों से पूछा तो सबों ने मना कर दिया। मन-ही-मन सोचा और कौन बनाने वाला है, लड़के ने बनाया होगा। लड़के को बुलाकर पूछा। लड़का कहने लगा—'पिताजी! क्यों परेशान होते हो आप? यह नक्शा अपने आप बन गया—'ओटोमेटिक' बन गया; कुदरत-स्वभाव-नेचर-प्रकृति से बन गया। देखिये पिताजी? आपकी टेबिल पर कागज पड़ा हुआ था। अलमारियों में रंग की पेंसिलें रखी हुई थीं। हवा चली और हवा चलने से रंग के परमाणु उड़े। उड़ करके इस कागज के ऊपर जमा हो गये। नक्शा बनकर तैयार हो गया।

भला नक्शा बनाने के लिये बनाने वाले की क्या जरूरत है ?, आप क्यों परेशान होते हो ?'

पिताजी कहने लगे—'बेवकूफ ! हमको बनाता है। ऐसा कैसे हो सकता है ? अपने आप बनने वाली चीज इतनी व्यवस्थित नहीं हो सकती।

यह किसी बुद्धिमान् का बनाया हुआ है। जहाँ आन्ध्र प्रदेश बनाना चाहिये वहीं आन्ध्र प्रदेश बना है। जहाँ उड़ीसा, बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश बनाना चाहिये वहीं उड़ीसा, बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश बना है। यह किसी दिमागदार का काम है, यह अपने आप बन सकता नहीं। अपने आप लकड़ी में घुन से कुछ आकृतियाँ अवश्य बन जाती हैं, लेकिन वे व्यवस्थित नहीं बनतीं।'

बालक हाथ जोड़कर कहने लगा—"बाबूजी ! आप मुझे क्षमा करें। यह छोटा-सा नक्शा बिना किसी बुद्धिमान् के बनाये नहीं बन सकता, तब यह इतना बड़ा संसार बिना किसी बुद्धिमान् के बनाये कैसे बन सकता है ? यह दुनियाँ इतनी व्यवस्थित है, इसका बनाने वाला भी कोई-न-कोई बुद्धिमान् (ज्ञानवान्) होना चाहिये। अगर ये चीजें अपने आप बनने वाली होतीं तो हिमालय हमारी आपकी खोपड़ी पर बन जाता, विन्ध्याचल पैरों पर बना होता, अन्य पहाड़ हमारे पेट पर बन जाते और श्री गंगाजी भूतभावन श्री शंकर के मस्तक पर न होकर हमारे मस्तक पर होतीं ; फिर हमारी आपकी क्या स्थिति होती ? क्षण भर भी हम आप जीवित रह सकते

थे क्या ? किसी ने आयोजना पूर्वक इसको बनाया है, तभी तो सृष्टि के आरम्भ से ही हिमालय अपने स्थान पर व्यवस्थित है, विन्ध्याचल अपने स्थान पर अवस्थित है और श्रीगंगाजी भूतभावन शङ्कर के सिर पर सुशोभित और सुस्थित हैं। गंगाजी चौमासे में जरा-सी बढ़ जाने पर क्या हाल कर डालती हैं, फिर कहीं समुद्र बाढ़ग्रस्त होने लगे तो हमारी आपकी सत्ता एक क्षण भी नहीं रह सकती।"

बाबूजी को बालक की बात भगवत्कृपा से समझ में आ गयी। उन्होंने अपनी भूल स्वीकार कर ली और बालक को भजन करने के लिये प्रोत्साहित किया। इतना ही नहीं वे स्वयं भी भगवान् का भजन श्रद्धा और तत्परता पूर्वक करने लग गये।

'पृथ्वी, जल, तेज, वायु के तालमेल से संसार बनता है, जीव बनते हैं' ऐसा चार्वाक मानता है। वह देह से अतिरिक्त चेतन की सत्ता नहीं मानता। स्वभाववादी है चार्वाक।

विकासवादी डार्विन आदि की थ्योरी विचित्र है। वह ऐसा मानता है कि अग्नि के परमाणु धीरे-धीरे इकट्ठे होकर के आग का गोला—सूर्य के रूप में परिणत हो गये। आग का स्वभाव ऊपर उठने का है। अग्नि के गोले में से एक टुकड़ा टूट करके गिरा और धीरे-धीरे वह ठण्डा हुआ। वही चाँद हो गया। फिर अग्नि के गोले में से छोटे-छोटे टुकड़े गिरे, वही ये तारे हो गये। फिर उसमें से एक बड़ा-सा टुकड़ा गिरा और वह धीरे-धीरे ठण्डा होकर के पृथ्वी बन गया।

सबसे पहले पृथ्वी पर छोटे-छोटे तृण पैदा हुए। धीरे-धीरे मोटे घास पैदा हुए। फिर विकास हुआ। पहले जमीन पर रेंगकर चलने वाले बिना पैरों वाले जानवर पैदा हुए। फिर विकासक्रम से छोटे-छोटे पैर वाले कीड़े पैदा हुए। फिर काल क्रम से बिच्छू, कनखजूरा आदि पैदा हुए। धीरे-धीरे कुछ बड़े पैरों वाले जानवर पैदा हुए। फिर बड़े-बड़े पैरों वाले गाय-बैल-भैंस-हाथी-घोड़े पैदा हुए। विकास होते-होते बन्दर पैदा हुए। बन्दर की पूँछ घिस गयी तो नर (आदमी, मनुष्य) पैदा हो गये।

इन लोगों के मत में संसार बनाने वाला कोई नहीं। संसार नेचर-स्वभाव-प्रकृति से अपने आप बन जाता है। संसार बनाने के लिये ईश्वर की कोई आवश्यकता ही नहीं।

हमारा सिद्धान्त है कि कुम्भकार (कुम्भार, कुलाल) घड़ा कब बनाता है, जब उसे घड़े के उपादान मिट्टी का ज्ञान होता है। वह यह जानता है कि घड़े के बनाने में मिट्टी की जरूरत होती है। वह यह भी जानता है कि मिट्टी में पानी डालना चाहिये। पानी डाल करके उसे खूब गूँद करके पिण्ड बनाना चाहिये। पिण्ड बना करके फिर उसे चाक पर चढ़ाना चाहिये। चाक पर चढ़ा करके उसे डण्डे से घुमाना चाहिये। घूमते हुए चाक पर दोनों हाथों से पिण्ड को घड़े की आकृति देनी चाहिये। इतनी जानकारी होने पर ही कुम्भार घड़ा बना सकता है, अन्यथा नहीं। इतना ही नहीं, कुम्भार को घड़ा बनाने का ज्ञान हो, पर बनाने की इच्छा न हो तो सात

जन्म में भी वह घड़ा बना सकता नहीं। इसलिये ज्ञान के साथ-साथ इच्छा भी चाहिये। घड़ा बनाने का ज्ञान भी हो और इच्छा भी हो, किन्तु कुम्भार हाथ-पर-हाथ रखकर बैठा रहे तो घड़ा बनेगा? सात जन्म में भी नहीं बनेगा। इसी तरह से कपड़ा बनाने वाले जुलाहे को इस बात का ज्ञान चाहिये कि सूत से कपड़ा बनाना चाहिये—'हैण्डलूम' चाहिये—'पावर-लूम' चाहिये। फिर बनाने की इच्छा भी चाहिये और इच्छा के बाद उपयुक्त क्रिया-हलचल या चेष्टा भी चाहिये। इस तरह किसी वस्तु को बनाने के लिये बनाने वाले को ज्ञान भी चाहिये, इच्छा भी चाहिये और क्रिया भी चाहिये। ज्ञानवान्, इच्छावान्, क्रियावान् चेतन ही हो सकता है; जड़ नहीं।

ज्ञानपूर्वा भवेल्लिप्सा लिप्सापूर्वाभिसंधिता।
अभिसंधिपूर्वकं कर्म कर्ममूलं ततः फलम्॥

(महा० शान्ति० २०६.६)

यदि आप 'प्रकृति से जगत् बनता है' ऐसा मानते हैं, तो मैं आपसे पूछता हूँ—'आपने प्रकृति रांड़ को देखा है? वह कितनी लम्बी-चौड़ी है? टन-मन-तोला-रत्ती की है? पीली, गोरी, लाल, काली, नीली कैसी है वह? वह हाथी-जैसी है, घोड़े-जैसी है या पक्षी-जैसी है, मनुष्य-जैसी है? जिसके बारे में आपको कुछ भी ज्ञान नहीं है, उस प्रकृति का नाम लेकर उसे आप मानते हैं, पर चेतन भगवान् को नहीं मानते। यदि प्रकृति ज्ञानवान् है, इच्छावान् है और

क्रियावान् है तब तो वह चेतन है, जड़ नहीं। फिर तो वह भगवान् ही है। खाली आपको भगवान् से चिढ़ या द्वेष है, इसीलिये आप उन्हें स्वीकार नहीं करते। हमारे वैयाकरणों ने 'स्वतन्त्रः कर्ता' (पा० सू० १.४.५४) इतना कहकर छोड़ दिया। जब नैयायिककर्ता का लक्षण करने लगे तब उन्होंने ठीक लक्षण किया—

कर्तृत्वं च उपादान (समवायिकारण) गोचराऽपरोक्ष (प्रत्यक्ष) ज्ञान चिकीर्षा (क्षित्यङ्कुरादिकंमत्कृत्या साध्यतामितीच्छा) कृति (प्रयत्न) मत्त्वरूपम् (किरणावली)" कर्तृत्वं च तत्तदुपादान गोचरापरोक्षज्ञान चिकीर्षाकृतिमत्वम्। ईश्वरस्य तावदुपादानगोचरापरोक्षज्ञानसद्भावे च 'यः स सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तपः' (मुण्डक १.१.९) इत्यादि श्रुतिर्मानम्। तादृश चिकीर्षासद्भावे 'सोऽकामयत बहुस्यां प्रजायेय' (तैत्ति० २६) इत्यादि श्रुतिर्मानम्। तादृश कृतौ 'तन्मनोऽकुरुत' इत्यादि वाक्यम्। (वेदान्त परिभाषा)

हमारे शास्त्रों में चन्द्रलोक इत्यादि की बातें हैं। पहले हम शास्त्रीय आधार पर जब चन्द्रलोक, सूर्यलोक, शुक्रलोक, शनिलोक, की बातें करते थे तो लोग कहते थे—ये रूढ़िवादी हैं। अब जब वैज्ञानिक कहने लग गये कि 'हाँ चन्द्रलोक है, शुक्रलोक है और शनिलोक आदि भी हैं' तब आप लोग इनकी बातों पर विश्वास करके लोक-लोकान्तरों की बातों को मानने लगे हैं। यद्यपि इन वैज्ञानिकों के हिसाब से हमारा हिसाब दूसरा है, फिर भी हम उनकी इस बात से सहमत हैं कि एक

ब्रह्माण्ड नहीं, अनन्तानन्त ब्रह्माण्ड हैं। अनन्तानन्त सूर्य, अनन्तानन्त चन्द्रमा आदि हैं। अनन्तानन्त ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत अनन्तानन्त जीव रहते हैं। हम-आप जिस पृथ्वी पर रहते हैं, यह एक ब्रह्माण्ड की पृथ्वी है।

अब आप सोचिये कि अनन्तानन्त ब्रह्माण्ड के अनन्तान्त सूर्य-चन्द्र-समुद्र-पर्वत आदि पदार्थों को बनाने के लिये इनके उपादान कारण पञ्चभूतादि का जिसको अपरोक्ष बोध हो, जिसे इन ब्रह्माण्डों को बनाने की इच्छा हो, जो इन्हें बनाने में समर्थ हो ऐसा कोई परमाणु-प्रकृति आदि 'जड़' पदार्थ तो हो सकता नहीं ! चेतन भी हम आप-जैसा अल्पज्ञ, अल्प शक्तिमान् हो सकता नहीं। जिसने इन अनन्तानन्त ब्रह्माण्डों को बनाया है वह कोई सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् ही हो सकता है, हम उसीको भगवान् कहते हैं।

आजकल पृथ्वी और उस पर बसे हुए जिन देशों का पता है, उन्हीं देशों में मनुष्यों के अतिरिक्त कितने पशु-पक्षी-कीड़े-मकोड़े-भुनगे आदि रहते हैं, उनकी मरदुमशुमारी (गणना) हमारे वश की बात नहीं। मनुष्य, बैल, गाय, भैंस, बकरे, बकरी इनकी गणना कर सकते हैं, लेकिन इतने पक्षी हैं, कीड़े-मकोड़े-भुनगे आदि हैं, इनकी गणना इस वैज्ञानिक युग में भी कैसे सम्भव है ! बरसात के दिनों में वर्षा बरसी नहीं कि न जाने कितने पतिंगे आदि पैदा हो जाते हैं ! एक बल्ब (बिजली की बत्ती) के नीचे एक रात में हजारों-असंख्यों पतिंगे पैदा होते हैं और सबेरा होते-होते

सब कहाँ चले जाते हैं ? वे क्या खाते हैं, क्या पीते हैं, कैसे सांस लेते हैं, कैसे जन्मते हैं और कैसे मरते हैं, इन बातों का पता क्या एटमबम, हाइड्रोजन बम, तोप, टैंक, मशीनगन, स्टेनगन बनाने वाले जितने वैज्ञानिक हैं, उन्हें भी है क्या ?

अनन्तानन्त ब्रह्माण्डों का ज्ञान, उनमें रहने वाले अनन्तानन्त जीवों का ज्ञान, अनन्तानन्त जीवों के अनन्तानन्त जन्मों का ज्ञान और उनकी समस्त गतिविधियों का ज्ञान जिसे है, उसी को हम भगवान् कहते हैं।

श्रीराम जय राम जय जय राम।
श्रीराम जय राम जय जय राम॥

—o—

३—परमात्म-विश्वास से सर्वानर्थनिवृत्ति

(१) पूर्वानुवृत्ति

"भगवान् का स्वरूप है सत्-चित्-आनन्द-सर्वतन्त्रस्वतन्त्र और निरंकुश शासन। हम भी अखण्ड सत्ता चाहते हैं—सदा जीवित रहना चाहते हैं—कभी मरना नहीं चाहते, सदा सर्व प्रकार का ज्ञान चाहते हैं, और दुःख-लेश-रहित सुख चाहते हैं, सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र होना चाहते हैं और सबके शासक बनना चाहते हैं। जो भगवान् का स्वरूप है, उसी को हम चाहते हैं। इस तरह जीव जान-अनजान में भगवान् को ही चाहता है, किन्तु माया से उत्पन्न होने वाले संसार के विषयों में मन आसक्त हो जाने के कारण उन्हीं में रमा रहता है। विषय जिसके लिये अभीष्ट हैं, उन भगवत्स्वरूप का विचार ही नहीं करता। जो भगवान् को नहीं मानते वे भी उन्हें अपने आप में प्राप्त करना चाहते हैं। स्वभाववादी-विकासवादी आदि भगवान् को न मानने वालों के मत में अनेक प्रकार की आपत्तियाँ हैं, वे उन आपत्तियों का कोई सन्तोषप्रद निराकरण नहीं कर पाते।" यही प्रसंग कल आप हमसे सुन रहे थे।

(२) चार्वाकमत की अन्त्येष्टि

चार्वाक जो कि संसार का सवप्रथम नास्तिक है, वह यह मानता है कि "संसार को उत्पन्न करने के लिये किसी चेतन

की आवश्यकता नहीं है। भगवान् को मानने की बात तो दूर रही वह इस शरीर में भी चेतन जीव नाम की दूसरी वस्तु भी नहीं मानता। जैसे पान में लाल-रंग नहीं है; किन्तु पान-कत्था-चूना जब मिल जाते हैं तो इनके मिलने से उनमें लाल-रंग पैदा हो जाता है, वैसे ही यह शरीर पृथ्वी, जल, तेज और वायु के परमाणुओं से बनता है, पृथ्वी में चैतन्य नहीं है, जल में चैतन्य नहीं है, तेज में चैतन्य नहीं है और वायु में चैतन्य नहीं है। पृथ्वी, जल, तेज और वायु ये चारों पदार्थ जड़ हैं लेकिन इनके मिलने से चैतन्य पैदा हो जाता है। जैसे जौ के आटे में, गुड़ और महुआ में अलकोहल नहीं है; लेकिन इन तीनों के मिलने से अलकोहल पैदा हो जाता है; वैसे ही चेतनाशून्य पृथ्वी, जल, तेज और वायु के परमाणुओं से बने हुए इस शरीर में चेतन पैदा हो जाता है, चैतन्य या जीव नाम का कोई स्वतन्त्र पदार्थ नहीं है।"

किन्तु ऐसा कहने वाले लोगों से यह कहना चाहिये—'भाई! पान-सुपारी-कत्था और चूना ये अपने आप नहीं मिलते, इनको मिलाने वाला कोई तमोली चाहिये; इसी तरह से गुड़-आटा और महुआ अपने आप नहीं मिलते, इनको मिलाने वाला कोई चेतन चाहिये; इसी तरह पृथ्वी-जल-तेज-वायु अपने आप नहीं मिल सकते, इनको मिलाने वाला कोई चेतन चाहिये। बिना चेतन के जड़ पदार्थों में क्रिया पैदा नहीं होती। रेलगाड़ी जड़ है, चलती है; मोटर जड़ है, चलती है; मशीन जड़ है, चलती है; बल्ब जड़ है,

रोशनी देता है; पर किसी चेतन से प्रयुक्त होकर। कोई चेतन चालक (ड्राइवर) हो तब रेलगाड़ी, मोटर साइकिल चलती हैं, अपने आप नहीं चलती। ओटोमेटिक (स्वचालित) जो राकेट है, वह भी बटन दबाने वाला कोई आदमी पृथ्वी पर हो तब उड़ने में समर्थ है, अन्यथा नहीं। साथ ही साथ रेल, मोटर, साइकिल और राकेट को बनाने वाला कोई चेतन होना चाहिए। किसी भी वस्तु का निर्माता चेतन ही हो सकता है, जड़ नहीं हो सकता।

(३) पुनर्जन्म की सिद्धि

हमारा धर्म, दर्शन पुनर्जन्म को मानता है। ईसाई, मुसलमान कहते हैं कि प्राणी एक बार ही पैदा होता है और एकबार ही मरता है। हम कहते हैं कि बार-बार पैदा होता है और बार-बार मरता है। आप कह सकते हैं कि 'इसमें क्या प्रमाण?' हम आपको सीधा-सीधा प्रमाण देकर बता देते हैं जिसे कोई टस-से-मस नहीं कर सकता।

पैदा होते ही बच्चे के मुँह के होठों पर उसकी माता दूध पिलाने के लिये अपने स्तन को जैसे ही लगाती है, वैसे ही बच्चा होठों को चलाने लगता है—दूध पीने लगता है। अब जो पूर्वजन्म नहीं मानते वे बतावें कि वह बच्चा तो पहले कभी पैदा हुआ नहीं तो उसे होठ हिलाना किसने सिखाया—यह ट्रेनिंग किसने दी? पूर्वजन्म न मानने वालों के यहाँ इसका कोई उत्तर नहीं है। फिर इसका भी उनके पास क्या

उत्तर है कि तोता, मैना, हंस, कारण्डव, कपोत आदि पक्षियों को उड़ना किसने सिखाया ? आप कह सकते हैं कि प्रकृति 'नेचर' ने सिखाया, तो क्या नेचर को आपने कभी स्वप्न में भी देखा ? जिसे आपने स्वप्न में भी नहीं देखा, जिसके न शरीर है, न आँख है, न कान है, न मुँह है, न दिल है, न दिमाग है—उसे आप सिखाने वाली मान सकते हैं ? यदि चेतन है तो शरीरधारी क्यों नहीं ? आप तो किसी भी अशरीरधारी को चेतन मान सकते नहीं। गाय-भैंस के बच्चे पैदा होते ही 'हाइजम्प', 'लोंगजम्प' करने लग जाते हैं। आप बताएँ इनको इस प्रकार की ट्रेनिंग कौन देता है ? मछली के बच्चे को, गाय-कुत्ते आदि के बच्चे को तैरना किसने सिखाया ? यदि कहें, 'नेचर' ने तो मनुष्य के बच्चे को जन्म लेते ही हाइजम्प-लोंगजम्प लगाना, तैरना और उड़ना उस 'नेचर' ने क्यों नहीं सिखाया ?

जब पहले जन्म हुआ ही नहीं तब क्यों कोई अत्यन्त गरीब के घर पैदा होता है ? क्यों कोई अमीर के घर पैदा होकर भी पैदा होते ही मर जाता है और कोई जेठ की दोपहरी में पत्थर कूटती पसीने में तर-बतर-सराबोर रविकर-निकर से दग्ध सिर और पाँव वाली माता के गर्भ से पैदा तो होता है, पर जिन्दा रहता है ? क्यों कोई आदमी पैदा होता है और कोई गधा, कुत्ता और सूकर ? जब पहले पहल पैदा होता है तब पहले का शुभ या अशुभ कर्म तो होता ही नहीं ; फिर सबको समान रूप से पुरुष ही पैदा होना चाहिये

या स्त्री ही या नम्बर तीन का (नपुंसक) ही ; पर क्यों कोई पुरुष पैदा होता है, कोई स्त्री तो कोई नम्बर तीन ? हमारा धर्म बताता है कि जन्म-जन्मान्तर, युग-युगान्तर, कल्प-कल्पान्तर से हम पैदा होते चले आ रहे हैं। अनन्तानन्त जन्म एक जीव लेता है। उन सब जन्मों में जो कर्म करता है, उसके अनुसार कोई जीव मनुष्य बनता है, कोई पशु-पक्षी बनता है, कोई देवता बनता है, कोई दानव बनता है, कोई यक्ष बनता है, कोई किन्नर बनता है, कोई राक्षस बनता है, कोई भूत-प्रेत और गन्धर्व। जलचर, थलचर और नभचर जीवों में शुभाशुभ विचित्र कर्मों के अनुसार विलक्षणता होती है। प्रारब्ध के अनुसार जब जिस प्रकार का जन्म जीव को प्राप्त होता है तब उसी के अनुसार उसकी प्रवृत्ति होती है और मन में संचित-संस्कार उद्बुद्ध (प्रकट, स्फुरित) होते हैं। संस्कारों के उद्बुद्ध होने के कारण गाय-बैल का बच्चा पैदा होते ही उछल-कूद मचाने लग जाता है, मछली का बच्चा तैरने लग जाता है और तोता-मैना का बच्चा पंख उगते ही उड़ने लग जाता है। प्राणियों के अनन्तानन्त कर्मों और जन्मों को कोई भी जीव नहीं जान सकता ?

(४) प्रकारान्तर से ईश्वर-सिद्धि

जीव तो अपने किये हुए कर्मों को ही भूल जाता है, फिर दूसरों के किये हुए कर्मों को कहाँ से जान सकता है ? हाँ, भगवान् सर्वज्ञ हैं। वे अनन्तानन्त जीवों को, जीवों के

अनन्तानन्त जन्मों को, अनन्तानन्त कर्मों को और किस कम का क्या फल मिलता है, इसको भी जानते हैं।

फैक्ट्री के मैनेजर को 'काम करने वाले कितने मजदूर हैं' इसका, 'किसने क्या काम किया है?' इसका और 'किसको कितना वेतन देना है?' इसका ज्ञान होता है। यह संसार एक फैक्ट्री है। भगवान् इसके मैनेजर हैं। इस सारे संसार में जितने जीव हैं, वे जितने कर्म करते हैं और उनके अच्छे बुरे जितने कर्म होते हैं, इन सबका भगवान् को ज्ञान है। इसलिये उन्हें सर्वज्ञ कहते हैं। साथ ही जीवों के कर्मों के अनुसार यथायोग्य फल प्रदान करने की उनमें ताकत भी है, इसीलिये उन्हें सर्वशक्तिमान् कहते हैं। जिसने बैल बनने योग्य काम किया है उसे भगवान् ही बैल बनाते हैं, जिसने मनुष्य बनने योग्य कर्म किया है उसे मनुष्य बनाते हैं और जिसने इन्द्र, यम, सूर्य, चन्द्र बनने योग्य कर्म किये उसे इन्द्र, यम, सूर्य, चन्द्र बनाते हैं। इसी प्रकार जिसने सूकर, कूकर, कीट, पतंग बनने योग्य कर्म किया है, उसे सूकर, कूकर, कीट, पतंग बनाते हैं।

एक सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् ईश्वरत्व को माने बिना संसार की व्यवस्था नहीं बन सकती, इसलिये भगवान् को मानना जरूरी है।

संसार के अन्दर जितनी वस्तुएँ हैं, उन सबका कोई-न कोई मालिक है, यहाँ कोई भी वस्तु लावारिश नहीं।

जिसका कोई मालिक नहीं सरकार उसकी मालिक। जंगल के पेड़ों पर भी नम्बर पड़े हुए हैं, वे सरकारी पेड़ हैं। जब छोटी-सी छोटी वस्तु लावारिश नहीं, तो इतनी बड़ी दुनियाँ का भी कोई-न-कोई मालिक होना चाहिये। बिना मालिक के नियंत्रण, संचालन नहीं हो सकता। अग्नि, सूर्य, वायु, इन्द्र, यम ये अपना-अपना काम नियमित नहीं कर सकते।

आप देखिये—सारे संसार के जितने देश हैं, उन देशों के प्रत्येक नगर में, गाँव में, प्रत्येक टोले-मुहल्ले में प्रतिदिन भगवान् सूर्य ठीक इतने बजकर, इतने मिनट और सेकेण्ड पर ही क्यों उगते हैं? केवल भारत ही नहीं, अमेरिका में, फ्रांस में, इंगलैन्ड में, रूस में और वासिंगटन, लन्दन, पेरिस इन सब नगरों में प्रतिदिन सूर्य निश्चित समय पर ही उगते हैं। इतना नियमित काम यदि किसी का चाबुक ऊपर न हो तो नहीं हो सकता। जिसको, जिस समय, जहाँ मरना होता है, वह उसी समय, वहीं मरता है। आधीरात में चलते-चलते मर जाता है, खाते-खाते मर जाता है, बातचीत करते-करते मर जाता है और कोई छह छह महीने नहीं, छह-छह साल तक खटिया में पड़ा-पड़ा सड़ता रहता रहता है, लेकिन मरता नहीं। यह किसी की व्यवस्था है कि मृत्यु नियमित रूप से ही मारता है, अनियमित रूप से नहीं? कहना होगा—अशरण-शरण-अकारण-करुण - करुणावरुणालय - दीनबन्धु - दीनानाथ-अनाथनाथ-जगन्नाथ विश्वनाथ का निरंकुश शासन है।

(५) परमात्म-विश्वास क्यों जरूरी ?

'भगवान् हैं। वे सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् , सर्वव्यापक हैं, सर्व नियामक और अशरण-शरण-अकारणकरुण-करुणावरुणालय हैं।' ऐसा विश्वास रखना चाहिये—ऐसा दृढ़ संस्कार हम लोगों को रखना चाहिये। बहुत से व्यक्ति भजन भी करते हैं, पूजन भी करते हैं, पर दिन-रात उनके मन में ऐसा सन्देह बना ही रहता है कि क्या पता कि भगवान् हैं भी या नहीं ? इस प्रकार के संशय का त्याग करना चाहिये। भगवान् के अस्तित्व में अनास्था रूप असम्भावना का भी त्याग करना चाहिये। साथ ही 'भगवान् निराकार ही हैं, साकार नहीं ; सगुण ही हैं निर्गुण नहीं' इस प्रकार के विपर्यय (विपरीत भावना) का त्याग करना चाहिये। 'भगवान् नहीं हैं और हैं या नहीं ?' ऐसा नहीं, हैं ही। वे सगुण-निर्गुण, साकार-निराकार, सर्वज्ञ-सर्वशक्तिमान्, सर्वनियामक हैं, ऐसा दृढ़ निश्चय होना चाहिये। यदि हमारे आपके हृदय में यह दृढ़ विश्वास हो जाय कि 'भगवान् हमारे सब कर्मों को जानते हैं, किस कर्म का क्या फल मिलना चाहिए, यह भी जानते हैं और कर्म के अनुसार फल देने की ताकत भी रखते हैं' तो संसार की सारी समस्याओं का हल हो जाय—'ब्लैकमार्केटिंग मिट जाय, चोरी मिट जाय, डाका मिट जाय, बसें जो लूटी जाती हैं, वह भी बन्द हो जाय। इतना ही नहीं जिसे भगवान् का मन्दिर कहते हो, उसी को शस्त्रास्त्र का भण्डार और सुरा-सुन्दरियों का बाजार बना रखे हो ; यह सब

अनधिकार चेष्टा क्यों ? इसलिए न कि भगवान् को हृदय से मानते नहीं हो, उन्हें सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् सर्वव्यापक, सर्व-नियामक जानते नहीं हो ?

एक समय था जब भारत में लोग भगवान् को हृदय से मानते थे। ऋषि-मुनियों से डरते थे। लोग ऐसा सोचते थे कि भगवान् तो मरने के बाद दण्ड देंगे पर ये तो शाप देकर भस्म कर देंगे। शास्त्र और ईश्वर में आस्था रखने वाले शासकों से जनता डरती थी। धार्मिक ईश्वर विश्वासी राजा के शासन में जनता चैन से रहकर भगवान् का भजन करती थी। चूहे के ऊपर बिल्ली आक्रमण नहीं करती थी, बिल्ली के ऊपर कुत्ता, कुत्ते के ऊपर शेर और शेर के ऊपर शार्दूल आक्रमण नहीं करते थे। भगवद्भक्त धार्मिक राजाओं, भजन-परायण-तपस्वी-ऋषि-मुनियों का ऐसा अद्भुत प्रभाव था। आज तो बाप के ऊपर बेटा और बेटे के ऊपर बाप आक्रमण करता है। इन सब समस्याओं का एकमात्र कारण है कि आज ईश्वर पर से विश्वास उठ गया है। आप महात्माओं के मुख से सुनते हैं कि यह संसार माया से पैदा हुआ है। यहाँ के विषयों में मन रमाना ठीक नहीं है। विषयों से मन को हटा करके भगवान् के परमपावन-चरणारविन्दों में मन को लगाने से परम-कल्याण होता है। जब संसार के विषयों में से मन हट जायगा तो फिर क्यों कोई दूसरों की जमीन हड़पेगा, दूसरों को धोखा देगा और चोरी, जारी, डाका आदि में प्रवृत्त होगा ? क्यों कोई किसी के मकान को छीनने

को तैयार होता है ? क्यों कोई किसी का राज्य छीनने को तैयार होता है ? क्यों कोई किसी की माँ-बहू-बेटी पर बुरी नजर डालने को तैयार होता है ? इसीलिये न कि लोगों के मन से ईश्वर के प्रति विश्वास उठ गया है। हमारे यहाँ का आदर्श तो यह था कि कोई चोर-जार, शराबी, मूर्ख और धर्मत्यागी अकर्मण्य नहीं था—

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः
नानाहिताग्निर्नाविद्वान्न स्वैरी स्वैरिणी कुतः।
(छान्दोग्योपनिषद् ५-११-५)

"न तो मेरे राज्य में कोई चोर है, न कंजूस है, न शराबी है, ऐसा भी कोई नहीं है जो अधिकारी होते हुए भी अग्निहोत्री न हो, न कोई मूर्ख है, न कोई व्यभिचारी पुरुष-जार है, फिर 'कुलटा स्त्री नहीं है' इसमें कहना ही क्या ?"

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः।
नानाहिताग्निर्नायज्वा मामकान्तरमाविशः॥
(महा० शान्ति० ७७.८)

न वै राज्यं न राजासीन्न च दण्डो न दण्डिकः।
धर्मेणैव प्रजाः सर्वारक्षन्ति स्म परस्परम्॥
(महा० शान्ति० ५९-१४)

"पहले न कोई राज्य था, न राजा, न दण्ड था और न दण्ड देनेवाला, समस्त प्रजा धर्म के द्वारा ही एक-दूसरे की रक्षा करती थी।"

यदि सारे संसार के मनुष्य सत्कर्म में लग जाँय और असत् कर्म से बचें तो भगवान् के चरण-कमलों में मन लग जाय। फिर कोई शासक की आवश्यकता ही न रह जाय, पुलिस की जरूरत नहीं, फौज और न्यायालय-अदालत की भी जरूरत नहीं।

(६) भगवत्कथामृत सेवन से भक्ति-विरक्ति

लोग पूछते हैं—'महाराज ! उपदेश सुनते-सुनते सारी उम्र बीत गयी, पर भगवान् में मन लगता ही नहीं। कृपा कर बतलाइये कि भगवान् में मन कैसे लगे ?'

हम सीधा-सा उत्तर देते हैं—'जिस वस्तु के रूप और गुण का ज्ञान होता है, उसी में मन रमता है। आजकल के नवयुवकों का मन लड़कियों में ऐसा लगता है कि उसके अलावा उन्हें और कोई दूसरी वस्तु दिखायी देती ही नहीं। वह नहीं मिले तो रेलगाड़ी की पटरी पर कटने को तैयार। ऐसा क्यों होता है ?' 'इन्ट्रेस्ट' जहाँ होता है—अभिरुचि जहाँ होती है, मन वहीं लगता है। अभिरुचि पैदा कब होती है, जब रूप और गुण का ज्ञान हो। भगवान् के रूप और गुण का ज्ञान हो तो भगवान् में मन लगे। हमारे वेद, पुराण, इतिहास का श्रवण करें तो भगवान् के रूप और गुण का ज्ञान हो। हमारे पूर्वज वेद, पुराण इतिहास की कथा सुनते थे, उन्हें भगवान् के रूप और गुण का ज्ञान होता था, उसके प्रभाव से भगवान् में प्रेम होता था, फिर दिन-रात उन्हें

भगवान् का ही चिन्तन होता था। आजकल तो सिनेमा देखते हैं और रेडियो सुनते हैं। भजन भी सुनते हैं तो वाराङ्गनाओं के मुख से। जिस भजन का आधार ही गलत है, उसका प्रभाव क्या पड़ेगा? आजकल सत्यनारायण की कथा भी रिकार्ड से होने लगी है। पण्डित को बुलाने की आवश्यकता ही नहीं रही है।

परलोक को नहीं मानोगे तो पापों से परहेज क्यों करोगे और परमेश्वर को नहीं मानोगे तो उनमें प्रेम भी कैसे करोगे? देखो भगवान् को न मानने वालों के हृदय में डर बना रहता है। यूरोप में एक घोर नास्तिक था। वह सदा भगवान् का खण्डन किया करता था। भगवान् के खण्डन के लिये चौबीसों घण्टे नयी-नयी युक्तियाँ सोचा करता था। वह जब मरने लगा, उसके मन में आया—'मैंने सारी उम्र भगवान् को माना नहीं, अगर मरने के बाद भगवान् निकल आया तो बण्टाढार हो जायगा। कम-से-कम मरते समय तो भगवान् को याद कर लूँ।'

परलोक और परमेश्वर के बारे में सन्देह हो तो भी पाप से बचो और भगवान् के भजन में कुछ समय लगाओ। यदि परलोक और परमेश्वर न हुआ तो तुम्हारा कुछ बिगड़ेगा नहीं, यदि हुआ तो उद्धार हो जायगा—

'सन्दिग्धे परलोकेऽपि कर्तव्यः पुण्यसञ्चयः।
नास्ति चेन्नास्ति नो हानिरस्ति चेन्नास्तिको हतः॥'

आपको खण्डवा से सनावर या इन्दौर सड़क के रास्ते जाना जरूरी है। कोई आप से आकर कहे—'देखो! इस रास्ते में डाकुओं का खतरा है। आपको जाना जरूर है तो पिस्तौल-बन्दूक साथ लेकर जाओ।' इतने में दूसरा आदमी आकर कहे—'रास्ते में कोई डाकू-आकू नहीं है। साथ में कुछ ले जाने की जरूरत नहीं है।' अब आप पहले आदमी की बात मानकर एक-दो अंगरक्षक—'बाडी गार्ड', पिस्तौल साथ लेकर चले। यदि रास्ते में डाकू मिल गया तो उसका मुकाबला कर सकते हैं, सुरक्षित रह सकते हैं, यदि रास्ते में डाकू नहीं मिला तो आपका कुछ बिगड़ना नहीं। इसी तरह एक दिन इस संसार को छोड़ना अवश्य है। अब आपने धर्म और ईश्वर के नाम पर कुछ दान-पुण्य और भजन कर लिया; यदि मरने के बाद परलोक और भगवान् नहीं सिद्ध हुआ तो आपका कुछ हर्ज नहीं, यदि सिद्ध हो गया और आपने जीवन में धर्म और ईश्वर के नाम पर कुछ नहीं किया तो आपका बड़ा नुकसान होगा।

आप तो नास्तिक नहीं, आस्तिक हैं। परलोक और भगवान् को मानते हैं। भगवान् से पुत्र, धन आदि वस्तुओं को चाहते भी हैं, लेकिन जब भगवान् के लिये फूल, फल, पान, सुपारी, वस्त्र आदि सामग्री खरीदने जाते हैं तो दुकानदार से पहले ही कह देते हैं कि हम अपने लिये चीजें नहीं लेने आये हैं, भगवान् के पूजन के लिये लेने आये हैं। सारी कंजूसी पूजा की सामग्री खरीदने में करते हैं। एक माई थी।

उसके बेटे का ब्याह हो गया। दो-चार वष हो गये कुछ हुआ नहीं। किसी ने कह दिया—'पोता चाहती है तो हनुमान्जी पर कुछ चढ़ा।' पाँच पैसे का घर में सिक्का था जो नहीं चलता था। उसीको लेकर चली बाजार में फल लेने। उस ठेले वाले के पास पहुँची जो अमरूद बेच रहा था। बोली—'भाई अमरूदवाले! अमरूद दो।', वह बोला—'यह तो घिसा हुआ सिक्का है।' माई बोली—'पाँच में नहीं तो चार पैसे में चल जायगा। मैं कोई खाने के लिये थोड़े ही लेने आयी हूँ।', अमरूदवाले ने ठेले के अन्दर जो पिलपिले अमरूद थे उनमें से उठाकर दो दे दिया। वह पिलपिले अमरूद को लेकर आयी और हनुमान्जी को चढ़ाती हुई बोली—"मुझे दो पोता दे हे हनुमान्जी महाराज!" '(मुझे दो पोता दे हे हनुमान्जी महाराज!)' हनुमानजी महाराज तो बड़े ही दयालु ठहरे। उन्होंने सोचा—'यह कुछ लायी ही तो है, कुछ ले तो नहीं जा रही है; दे दूँ इसको पोता।', बस क्या था! दो पोते हो गये, लेकिन पोतों की देह अमरूद की तरह पिलपिली थी। ठीक है 'जैसा दे, वैसा ले।'

आजकल विवाह में आप लाखों रुपये खर्च कर देते हैं। हजारों बैंड वालों पर खर्च करते हैं। बरातियों को, बैंड वालों को और उनके बाजों को भी माला पहनाते हैं, पर पूजा कराने वाले पण्डितजी यदि पूजा के लिये यदि फूल भी माँगे तो आप कहते हैं, 'पंडितजी! पढ़े-लिखे तो जरूर हो पर

गुने नहीं हो। अवसर तो देखा करो। भला हम में से किसे फुर्सत है कि बाजार जाकर पूजा के लिए फूल लायें। जो कुछ सामग्री है, उसी से झटपट पूजा कराओ।'

हमारे शास्त्रों में लिखा है, जो अपने को अतिप्रिय लगे, वह वस्तु भगवान् के लिये अर्पित करनी चाहिये।'

"यद् यदिष्टतमं लोके यच्चातिप्रियमात्मनः।
तत्तन्निवेदयेन्मह्यं तदानन्त्याय कल्पते॥"

(भागवत ११-११-४१)

"संसार में जो वस्तु अपने को सबसे प्रिय, सबसे अभीष्ट जान पड़े, वह मुझे समर्पित करे। ऐसा करने से वह वस्तु अनन्त फल देने वाली होती है।"

इस तरह जो हमको सर्वाधिक प्रिय हो, वह वस्तु भगवान् को अर्पण करनी चाहिये। आजकल के व्यक्ति जो वस्तु निकम्मी होती है, जो किसी के काम न आने वाली वस्तु होती है, वह भगवान् के लिये अर्पण करते हैं। मन्दिर में आते हैं लोग और जो बाजार में कहीं नहीं चले वह दस नये पैसे का सिक्का भगवान् को चढ़ाते हैं। भगवान् कहते हैं—'चढ़ाया तो सही। जो कहीं नहीं चलता है, वह मेरे यहाँ चलता है।'

आज कमी है तो दुनियाँ में इस बात की कि भगवान् के ऊपर से लोगों की श्रद्धा, आस्था और विश्वास उठता चला जा रहा है। नास्तिकवाद दुनियाँ में अधिक से अधिक फैलता चला

जा रहा है। यद्यपि उसमें कोई दम नहीं है, कोई तर्क नहीं है, युक्ति नहीं है, प्रमाण नहीं है, तो भी लोग भगवान् के पीछे लट्ठ लिये फिरते हैं। यह मनुष्य जीवन हमको इसलिये मिला है कि हम अपने को भगवान् के चरणों में अर्पण कर दें।

श्री राम जय राम जय जय राम।
श्री राम जय राम जय जय राम॥

સમરીતિર્મહાતેજાઃ પરબ્રહ્મ સનાતનઃ ।
જયતાજ્જાનકીનાથો વેદવેદ્યો મહામતિઃ ॥
ankurnagpal108@gmail.com

४—ईश्वरानुभूति की सुगम पद्धति

(१) भगवत्सम्बन्ध में 'प्रश्न' भगवत्सत्ता बिना अनुपपन्न

भगवान् सच्चिदानन्द स्वरूप हैं, सर्वतन्त्र स्वतन्त्र और सबके परम नियामक (शासक) हैं। हम आप भी सत्, चित्, आनन्द, सर्वतन्त्रस्वतन्त्र और सर्वशासक होना चाहते हैं। नर नारायण बनना चाहता है, आत्मा परमात्मा बनना चाहता है और जीव शिव बनना चाहता है। जो लोग कहते हैं कि 'परमात्मा नहीं है' वे लोग भी अपने आप में परमात्मा बनना चाहते हैं। इस दृष्टि से अगर देखें तो संसार में कोई नास्तिक है ही नहीं, सब आस्तिक ही हैं, सभी भगवान् के भक्त हैं। जो लोग कहते हैं 'भगवान् है या नहीं ?' उनका प्रश्न ही यह बतलाता है कि भगवान् है। जो वस्तु संसार में नहीं होती, उसके लिये संसार में कोई प्रश्न भी नहीं करता। बन्ध्यापुत्र, शशश्रृङ्ग, मरु-मरीचिका और आकाश-कुसुम संसार में नहीं हैं, विकल्प मात्र हैं, इनके बारे में कोई प्रश्न भी नहीं करता। 'यह बन्ध्यापुत्र शशश्रृङ्ग (खरगोश के सींग) का धनुष धारण किये, मृगतृष्णा जल में स्नान किये और आकाश कुसुम की माला पहने जा रहा है।' इस प्रकार कथन मनोविनोद मात्र के लिये होता है, इन वस्तुओं का अस्तित्व मानकर नहीं—

"मृगतृष्णाम्भसि स्नातः खपुष्पकृतशेखरः।
एष बन्ध्यासुतो याति शशश्रृङ्गधनुर्धरः॥"

(शाङ्करभाष्य, तैत्ति० २-१)

किसी ने कल्पना करके कहा—'यह बन्ध्या का पुत्र जा रहा है।' दूसरा उससे भी अधिक बुद्धिमान् था, उसने कहा—'उसके हाथ में खरगोश के सींग का धनुष भी है।' तीसरे ने कहा—'वह मृगतृष्णा के जल में नहाये हुए है।' चौथे ने कहा—'वह आकाश-कुसुम की माला पहने हुए है।'

कहने का तात्पर्य यह कि संसार में जिस वस्तु का अभाव है, उस वस्तु के सम्बन्ध में कभी प्रश्न भी नहीं किया जाता। लेकिन बड़े-बड़े विद्वान् भी संसार में भगवान् के विषय में सन्देह करते हैं 'भगवान् नहीं है।' इस तरह भगवान् के सम्बन्ध में संशय और विपर्यय व्यक्त करने वालों से कहो—

'भाई! जान करके प्रश्न करते हो या भगवान् को न जान करके? जो जिस वस्तु को बिलकुल नहीं जानता, वह उसके सम्बन्ध में प्रश्न भी नहीं करता? यदि जान करके प्रश्न करता हो, तब तो उस वस्तु के अस्तित्व को मानते ही हो, क्योंकि ज्ञान तभी हो सकता है, जब कोई वस्तु हो!

(२) 'भगवान् कहाँ है, कैसा है और क्या करता है?'

प्रश्न राजा का और उत्तर एक ब्राह्मण-बालक का

एक राजा थे। पण्डित-पुरोहित उनसे कहा करते थे—'राजन्! संसार बड़ा बखेड़ा है। आपकी वृद्धावस्था आ गयी। अब आप भगवान् का चिन्तन किया करें, भजन किया करें? संसार-सागर से पार जाने का उपाय एकमात्र भगवान् की शरणागति है। भगवान् के शरणागत होकर अपना उद्धार करें?'

राजा ने एक दिन प्रधान पुरोहित-प्रधानमन्त्री से कहा—'भगवान् कहाँ है, भगवान् कैसा है और क्या करता है?' आप बतलाइये। आप हमारी दी हुई सम्पत्ति का उपभोग करते हैं, यदि इन प्रश्नों का उत्तर न दे सके तो आपकी जागीर छिन जायगी।

पण्डित जी ने बताया—'राजन्! आपके प्रश्नों का उत्तर सोच-विचार कर कल बतलावेंगे। ऐसा कहकर घर चले आये। पलंग पर लेट गये। घर वाले उन्हें खिन्न जानकर बहुत दुःखी हुए। बहुत प्रयास करने पर भी पण्डित जी कुछ नहीं बोले। न कुछ भोजन-पानी ही ग्रहण किया। चिन्तित होकर लेटे रहे। वे सोचने लगे—'कल प्रश्नों का उत्तर देना है। क्या उत्तर देंगे, कुछ समझ में नहीं आता।' घर के लोग पूछते-पूछते थक गये। पण्डित जी समझते थे इनमें से कोई प्रश्न का उत्तर बता सकता है नहीं, इसलिये व्यर्थ बातचीत करने से क्या लाभ? एक उनका बच्चा था आठ-नौ साल का। वह आकर बोला—'दादा! आज क्या बात है? न भोजन करते हो न हमलोगों से बोलते हो, न सोते हो, लगता है बहुत चिन्तित हो। मुझे बताओ, क्यों दुःखी हो?' पण्डित जी ने पहले टालना चाहा। हमारी बुद्धि ही जब इन प्रश्नों को सुनकर चकरा रही है, तब यह बालक भला इसको क्या समझेगा और क्या इनका उत्तर दे पायगा।', फिर भी राजहठ, स्त्रीहठ, योगीहठ और बालहठ प्रसिद्ध ही है। बालक मचल उठा। दादा! एकबार बताओ तो सही?

बच्चे ने जब हठ किया तो पण्डित जी ने कहा—'बेटा ! बड़ी भारी समस्या आ गयी है। राजा ने तीन प्रश्न किये हैं—(१) भगवान् कहाँ है ? (२) भगवान् कैसा है और (३) भगवान् क्या करता है ? राजा ने यह भी कहा है कि कल तीनों प्रश्नों का सही उत्तर न मिलने पर परिवार सहित आपको देश निकाला भी दे दूँगा।'

बच्चे ने कहा—'छोटी-सी बात है। पिताजी ! आप भोजन करो और विश्राम करो। आप जब कल राजदरबार में जाओ तो मुझे ले चलना। मैं राजा साहब के तीनों प्रश्नों का उत्तर दे दूँगा। आप कहना—'राजन् ! तीनों बहुत सामान्य प्रश्न हैं, इनका उत्तर, हम क्या दें। इनका उत्तर तो यह बच्चा ही दे देगा ?'

रात बीती। दूसरा दिन आया। बालक को लेकर पंडित जी राजसभा में गये। राजा ने कहा—'पण्डितजी हमारे तीनों प्रश्नों का उत्तर दें ?'

पण्डितजी बोले—'राजन् ! उत्तर हमारा यह बच्चा दे देगा।'

राजा ने कहा—'बालक ! तुम्हीं उत्तर देने आये हो तो दो उत्तर।'

बालक ने कहा—'किस बेवकूफ ने तुमको राजा बना दिया, पहले यह बताओ। राजा बन गये और किसके साथ क्या व्यवहार करना चाहिये, यह पता ही नहीं।'

राजा ने कहा—'क्या बात है ?'

बालक ने कहा—"पिताजी तो रोज आते हैं, पर हम तो तुम्हारे महमान हैं। हम आज तुम्हारे घर अतिथि बनकर आये हैं। पहले सत्कार और खाने-पीने की बात करनी चाहिये थी। अरे हम बालक हैं, कोई घर से भूखे चले हों सो बात नहीं, पर जानते नहीं 'हाथ सूखा और बच्चा भूखा' बच्चे को भूख लगते कितनी देर लगती है ? हमको कुछ खाने-पीने को पूछा होता, पर आते ही 'उत्तर दो' कहने लग गये। बड़े राजा कहलाते हो ?"

राजा ने कहा—"बात ठीक कहते हो ! भूल हो गयी। बोलो—क्या खाओगे ? तुम्हारी इच्छा के अनुसार खाने-पीने की वस्तु ला दें ?'

बालक ने कहा—'हम दूध पियेंगे।'

राजा ने बालक के ऐसा कहते ही सोने के कटोरे में केसर-पिस्ता-बादाम-मिश्री आदि से युक्त बढ़िया गोदुग्ध लाकर सामने कर दिया। बालक ने उसे हाथों में लिया और घूर-घूर कर देखने लगा। फिर थोड़ी देर बाद उँगली डालकर हिलाने लगा। थोड़ी देर तक तो राजा ने सोचा बच्चा है, बचपन (लड़कपन) करता है, किन्तु जब बालक बराबर वैसा करता रहा-पीने का नाम निशान ही नहीं, तब राजा से नहीं रहा गया। उसने कहा- 'तुम कहते थे, 'हमें भूख लगी है, दूध पियेंगे और अब यह क्या करने लग गये ! दूध पीते क्यों नहीं ?'

बालक ने कहा—"राजन्! हमने सुना है, आपने भी सुना होगा और सारा संसार कहता है कि दूध में मक्खन होता है। मैं इसमें खोज रहा हूँ कि मक्खन कहाँ है?"

राजा ने कहा—"क्या बचपन कर रहा है?"

बालक ने कहा—'बचपन नहीं कर रहा हूँ। सारी दुनियाँ इसमें मक्खन बताती है, इसलिये इसमें मक्खन खोज रहा हूँ कि मक्खन कहाँ हैं?'

राजा ने कहा--इसके जर्रे-जर्रे में रग-रग में सब हिस्सों में मक्खन व्याप्त है, लेकिन दूध में मक्खन दीखता नहीं। यदि दूध में मक्खन देखना हो तो पहले इसमें जामन डालो, फिर दही बनाओ, फिर रयि से उसको मथो, फिर हाथ से ऐसे-ऐसे थप-थपाओ, तब मक्खन दिखाई देगा।"

बालक ने कहा—"राजन्! इसी प्रकार इस सारे संसार के परमाणु-परमाणु में रग-रग में रेसे-रेसे में भगवान् व्याप्त हैं; लेकिन भगवान् ऐसे नहीं दिखाई देते। यदि भगवान् को देखना हो तो पहले संसार रूप दुग्ध को 'धृतिः क्षमा' आदि सामान्य धर्मों के पालन से उष्ण (गर्म) कीजिये, फिर वेद-शास्त्र-इतिहास-पुराण सम्मत जो सनातन वर्णाश्रम धर्म है उसका अनुष्ठान रूप 'जामन' डालकर दधि तुल्य (दही के समान) बनाइये, फिर उपासना-रूप मथानी से मथिये; पुनः ज्ञान के हाथों से उसे थपथपाइये। ऐसा करने पर संसार में आपको भगवान् ही भगवान् दिखायी देंगे।'

राजा ने कहा "बेटा! बड़े बुद्धिमान् हो। भगवान् कहाँ है' यह बात मेरी समझ में आ गयी। अब यह बताओ कि भगवान् कैसे हैं?"

बालक ने कहा—'राजन्! जैसे दुग्ध (दूध) का सार-सर्वस्व मक्खन है, वैसे ही संसार का सार-सर्वस्व भगवान् है। जैसे दूध से मक्खन निकालने के बाद क्या रह जायगा? छाछ; वैसे ही इस जगत् में से अस्ति-भाति-प्रिय (सत्-चित्-आनन्द) रूप भगवान् को निकाल लो तो यह जगत् केवल छाछ के समान नाम-रूपात्मक बच जायगा। तभी तो कहा है 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' (निरालम्बोपनिषत्) अर्थात् ब्रह्म सत्य है और जगत् मिथ्या है?' इस तरह भगवान् सर्वव्यापक होनेपर भी वेदोक्त कर्म-उपासना और ज्ञान का आलम्बन लेने पर दूध से मक्खन के समान प्रकट होता है; जैसे दुग्ध-सार-सर्वस्व-नवनीत (मक्खन) है, वैसे ही प्रपञ्च (जगत्) सार-सर्वस्व भगवान् है। 'भगवान् कैसे प्रकट होता है और कौन या कैसा है?' इन दो प्रश्नों का उत्तर हो गया।'

राजा ने कहा--'हाँ भैया! हमारे दो प्रश्नों के उत्तर हो गये। अब तीसरे प्रश्न का उत्तर दो।'

बालक ने कहा---"तुम तो पूछना भी नहीं जानते। पहले मुझे यह बताओ कि तुम गुरु बन कर पूछ रहे हो या चेला बनकर? यदि गुरु बनकर पूछते हो तो गुरु पहले चेला को बताता है, फिर पूछता। पहले तुम मुझे इस प्रश्न का उत्तर

बताओ, फिर मुझ से पूछो। यदि चेला बनकर पूछते हो तो पूछने का यह तरीका नहीं है।"

राजा ने कहा--"साहब आप ब्राह्मण के बालक हैं। आपसे गुरु बनकर तो पूछने की हमारी हिम्मत नहीं है। चेला बनकर ही आपसे पूछते हैं।"

बालक ने कहा—"चेला बनकर पूछते हो तो पहले ऊपर से नीचे उतरो और मुझे ऊपर बिठाओ। गुरु को तो नीचे खड़े किये हो और चेला बन कर ऊपर बैठे हो।"

राजा ऊपर से नीचे उतर गया और ब्राह्मण-बालक को सिंहासन पर बैठा दिया। फिर राजा ने कहा—'बोलो महाराज ? भगवान् क्या करता है ?'

बालक बोला--'राजन्! देखा नहीं, यही करता है नीचे वाले को ऊपर और ऊपर वाले को नीचे कर देता है। भगवान् मच्छर को ब्रह्मा और ब्रह्मा को मच्छर बना देता है।

इस तरह राजा के तीनों प्रश्नों का उत्तर बुद्धिमान् बालक ने देकर संतुष्ट किया और अपने पिता को संकट से मुक्त किया।

(३) 'आँखों से दीखता नहीं, अतः भगवान् है भी नहीं'

इस अवधारणा का युक्तियुक्त निराकरण

कुछ लोग कहते हैं--'भगवान् आँखों से नहीं दिखाई देता है; इसलिये हम उसे नहीं मानते, जो चीज आँखों

से दिखाई देती है, उसे मानते हैं, जो आँखों से नहीं दिखाई देती, उसे नहीं मानते।'

परन्तु ऐसा यदि बिना पढ़ा-लिखा कहे तो वह क्षमा का पात्र हो सकता है, अगर पढ़ा-लिखा बुद्धिमान् व्यक्ति कहे तो क्षम्य (क्षमा का पात्र) नहीं हो सकता। जिस पर हम इतना अभिमान करते हैं और यह कहते हैं कि जो वस्तु आँखों से दिखायी देगी उसी को मानेंगे, वह आँख बेचारी कितनी गरीब है, यह उन अपने आपको बुद्धिमान् मानने वाले व्यक्ति को मालूम नहीं। आँखें अतिदूर की वस्तु को नहीं देख सकतीं, नजदीक-से नजदीक वस्तु को भी नहीं देख सकतीं। परमाणु आदि बहुत सूक्ष्म वस्तुएँ भी आँखों से नहीं दीखतीं, नेत्र के साथ मन का योग न हो तो भी वस्तुएँ नहीं दीखतीं। भगवान् का पूजन करते समय मन अगर दूसरी जगह होता है तो सामने पड़ी चन्दन की कटोरी भी नहीं दिखाई देती। (साथ ही जो नेत्र का सर्वथा अविषय हो जैसे गन्ध, रस और सुख-दुःखादि वस्तुएँ--वे भी आँखों से नहीं दीखतीं।) वस्तु और आँख के बीच में कोई दीवार आदि रुकावट आ जाय तो भी आँखों से वस्तुएँ नहीं दीखतीं--

"अतिदूरात् सामीप्याद् इन्द्रियघातान्मनोऽनवस्थानात्।
सौक्ष्म्याद्व्यवधानादभिभवात्समानाभिहाराच्च।।"

(सांख्यकारिका ७)

"अत्यन्त दूरता से, अत्यन्त समीपता से, इन्द्रियों की

विकलता से, मन की अनवधानता से, सूक्ष्मता से, व्यवधान रहने से, अभिभूत होने से, समान जातीय के सम्मिश्रण से और अप्रकटता से विद्यमान होती हुई भी वस्तु की उपलब्धि नहीं होती ।"

अत्यन्त दूर की वस्तु दिखाई नहीं देती, इसे आप सब लोग स्वीकार करेंगे । जो वस्तु आँखों के अत्यन्त समीप है, उसे भी आप नहीं देख सकते । आँखों के सबसे नजदीक अपनी उँगली से लगाया हुआ कज्जल है, चाहे आँखें फार-फार के देखो, चाहे दूरबीन लगा के देखो उसे आप देख सकते नहीं । आँख तो उस कज्जल से भी ज्यादा नजदीक है ; किन्तु अपनी आँखों से अपनी आँखों को आप लोग देख सकेंगे क्या ? जो आँख अपने को ही नहीं देख सकती, वह भगवान् को कहाँ से देखेगी ? कोई कहे कि 'महाराज दर्पण से तो आँख दिखाई पड़ती है ?' तो हम उत्तर देंगे—'भाई बड़े बुद्धिमान् बनते हो, पर इतना नहीं जानते कि वह आँख का प्रतिबिम्ब है न कि आँख ? आँख की परछाईं को ही आप आँख समझ रहे हो ।'

यदि कोई कहे कि 'अपनी आँखों को न सही, दूसरे की आँखों को तो अपनी आँखों से देखते ही हैं ।' तो हम कहेंगे कि यह भी तुम्हारा भ्रम ही है । जिसे तुम अपनी या दूसरे की आँख समझते हो वह भी असल में बल्ब के समान गोलक ही है ।, नेत्र इन्द्रिय तो सूक्ष्म है—अतीन्द्रिय है ।

इस तरह जब आँख से आँख को हो नहीं देख सकते तो भगवान् को कैसे देख सकते हो ? इसलिए कहते हैं कि भगवान् इतनी दूर है जितना दूर कोई नहीं और इतना नजदीक है जितना नजदीक कोई नहीं ।

"तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके ।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदुसर्वस्यास्य बाह्यतः ।।"

(ईशावास्योपनिषत् ५)

"वह चलता है और नहीं भी चलता है (स्वयं अचल रहकर ही चलता हुआ-सा जान पड़ता है), वह दूर भी है और समीप भी है । वह सबके अन्तर (भीतर) है और बाहर भी है ।"

अन्तरात्मा हो तो भगवान् है । इसलिये वह अति नजदीक है । अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय— इन पाँच कोशों से अर्थात् स्थूल शरीर (अन्नमय), सूक्ष्म शरीर (प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय) और कारण शरीर (आनन्दमय) रूप तीनों शरीरों से आवृत है । इसलिये बहुत दूर भी है ।

एक सज्जन हमसे बहुत आग्रह कर रहे थे । उनका कहना था कि जो चीज आँख से दिखाई देती है, उसीको हम मानते हैं । हमने उनसे कहा 'देखो बहुत आग्रह मत करो कि हम आँख से देखी हुई चीज ही मानते हैं । अगर तुम इस बात पर डट जाओगे तो हम तुमको सभ्य भाषा में सूरदास और चण्डूखाने की भाषा में निपट अन्धा कहेंगे ।'

सज्जन ने कहा—'महाराज ! ऐसा क्यों ?

हमने कहा—'तुम आँखों से देखी हुई वस्तु ही मानते हो, किन्तु तुमने आज तक अपनी आँखों को ही अपनी आँखों से नहीं देखा तो तुम बिना आँखों-वाले सूरदास या निपट अन्धे हुए कि नहीं ? अब तुम ऐसा मानो कि मेरी आँखें हैं ही नहीं।'

इसी बात को लेकर एक दूसरे सज्जन बहुत आग्रह करने लगे। मैंने उनसे कहा—'तुमने अपनी आँखों से आँखों को नहीं देखा, इसलिये तुम निपट अन्धे हो क्या ? इतना ही नहीं, तुम अपने पिताजी को माता के बताने से जानते हो न कि आँखों से देखकर ? अपने पिताजी को आँखों से नहीं देखा, तो क्या बिना बाप के आसमान से टपके हो ?'

"माता जानाति यद्गोत्रं माता जानाति यस्य सः ।
मातुर्भरणमात्रेण प्रीतिः स्नेहः पितुः प्रजाः ॥"

(महा० शान्ति० २६६-३५)

"पुत्र का गोत्र क्या है ? यह माता जानती है। वह किस पिता का पुत्र है ? यह भी माता ही जानती है। माता बालक को अपने गर्भ में धारण करती है, इसलिये उसीका उस पर अधिक स्नेह और प्रेम होता है। पिता का तो अपनी सन्तान पर प्रभुत्वमात्र है।"

ऐसी बहुत सी वस्तुएँ हैं जो आँखों से नहीं दिखाई देतीं, जैसे दिन में तारे नहीं दिखाई देते ? सूर्य की प्रभा से

उनकी कान्ति दब जाती है, जैसे दिन में मोमबत्ती या लालटेन आदि का प्रकाश सूर्य के प्रकाश से दब जाता है।

(४) नाम-रूपात्मक जगत् में अस्ति-भाति-प्रियरूप भगवान् का दर्शन

हम आप लोगों को पहले दिन से ही बता रहे हैं कि भगवान् सच्चिदानन्द हैं। 'सत्' को हिन्दी में 'है' और कहीं-कहीं 'छै' भी बोलते हैं। यह जो भगवान् का सत्-स्वरूप है, इसका अनुभव प्रत्येक पदार्थ में हमको आपको होता है, 'घड़ी है, चश्मा है, पंखा है, बाग-बगीचा है, कागज है, आँख है, कान है, हम हैं, हमारे पुत्र-पौत्रादि हैं' इस तरह संसार में जितनी चीजें दिखाई देती हैं, उन सबके साथ 'है' लगा हुआ है। यह सत्ता का वाचक है। ऐसी कोई चीज है, जहाँ 'है' न हो ? यह 'है' न तो कभी पैदा हुआ और न कभी खतम होने वाला ही है। यह अनादि और अनन्त है। 'है' अपने विरोधी के साथ भी रहता है। जब घड़ी यहाँ नहीं होगी तब आप क्या कहोगे कि 'घड़ी नहीं है'। 'है' का विरोधी कौन हुआ ? 'नहीं है', है अपने विरोधी के साथ भी रह गया। 'नहीं' को अपनी सत्ता सिद्ध करने के लिये 'है' की जरूरत है। 'घड़ी का नाश हो गया है' ऐसा कहने पर भी घड़ी का नाश सिद्ध होता है न कि 'है' का। घड़ी अपने विरोधी के साथ नहीं रह सकती, लेकिन 'है' अपने विरोधी के साथ भी रहता है।

'है' सर्व व्यापक भगवान् का स्वरूप है। इसलिये यह प्रश्न ही नहीं उठता कि वह कहाँ है ?

एक दिन प्रह्लाद से उसके पिता ने पूछा 'कहाँ है तेरा भगवान् ?' प्रह्लाद भगवान् के भक्त थे। जो भगवान् का भक्त होगा, वही माता-पिता का भक्त होगा। देश का भी वही भक्त होगा। आजकल लोग भगवान् के भक्त नहीं तो अपना पेट और घर भरने के लिये न तो माता-पिता के भक्त, न देश के भक्त होते हैं। प्रह्लाद को इतना त्रास हिरण्यकशिपु ने दिया जितना दुनियाँ में कोई भी दे सकता नहीं ; लेकिन प्रह्लाद ने पिता का विरोध नहीं किया।

उसकी दी हुई सब असह्य यातनाएँ हँसते-हँसते सहन की। फिर पिता ने पूछा—"कहाँ है तुम्हारा भगवान् ?"

यस्त्वया मन्दभाग्योक्तो मदन्यो जगदीश्वरः।
क्वासौ यदि स सर्वत्र कस्मात् स्तम्भे न दृश्यते ॥

(भागवत ७-८-१३)

"अभागे तूने मेरे सिवा जो और किसी को जगत् का स्वामी बतलाया है, सो देखूँ तो तेरा वह जगदीश्वर कहाँ है ? अच्छा क्या कहा 'वह सर्वत्र है' तो इस खम्भे में क्यों नहीं दीखता ?"

प्रह्लाद ने हाथ जोड़कर कहा—'पिता जी ? आप भगवान् के लिये यह नहीं कह सकते हैं कि भगवान् कहाँ है ? प्रत्युत यही कह सकते हैं कि 'वह कहाँ नहीं है ? अर्थात् सब जगह है।'

भगवान् सब जगह है, अभी आपको बताया सत्-स्वरूप व्यापक है। वह अनन्त है, उसका कभी नाश नहीं होता। वह अपने विरोधी के साथ भी रहता है। अन्धेरा और उजाला कभी एक साथ नहीं रह सकता। दिन-रात का कभी एक साथ दर्शन नहीं हो सकता। लेकिन भगवान् का जो सत्-स्वरूप है, वह अपने विरोधी के साथ भी रह लेता है। उसका विरोधी कौन है ? 'है' का विरोधी 'नहीं है' वह है उसके साथ भी रह लेता है।

अस्ति-भाति-प्रिय और नाम-रूप ये पाँचों संसार की वस्तुओं में पाये जाते हैं। इनमें अस्ति (है), भाति (ज्ञान) और प्रियरूप से संसार में भगवान् व्याप्त हैं, जब कि संसार स्वयं नाम-रूपात्मक है—

अस्ति भाति प्रियं रूपं नाम चेत्यंशपञ्चकम्।
आद्यत्रयं ब्रह्मरूपं जगद्रूपं ततो द्वयम् ॥

(सरस्वती रहस्योपनिषत् २३, २४)

'घटोऽस्ति' घट है के समान ही 'घटोभाति' घट प्रतीत होता है या भासित होता है ऐसा भी हम कहते हैं। घट-पट, घड़ी-घोड़ी, शब्द-स्पर्श आदि का जो ज्ञान है, यह भगवान् का रूप है। घड़ी का ज्ञान, मकान का ज्ञान, मित्र का ज्ञान, पुत्र का ज्ञान, पौत्र का ज्ञान, आँख का ज्ञान, कान का ज्ञान, कपड़े का ज्ञान यह ज्ञान ऐसा है, जिसके बिना वस्तु होतो हुई भी नहीं के बराबर। जो घड़ी को नहीं जानता, उसके सामने ही घड़ी पड़ी क्यों न हो, पर उसके लिये बेकार। जो

हाथी को नहीं जानता, उसके सामने ही हाथी क्यों न हो, उसके लिये बेकार। इसी तरह समझो कि भगवान् के बिना सारे संसार की वस्तुएँ मौजूद होते हुए भी बेकार—नहीं के बराबर। ऐसा जो भगवत्स्वरूप ज्ञान है वह अज्ञान के साथ भी रह लेता है। दिन-रात, प्रकाश अन्धकार का एक साथ रहना सम्भव नहीं, पर ज्ञान-अज्ञान का एक साथ रहना सम्भव है। भला कैसे ? भले ही कोई घड़ी को न जानता हो, पर उससे पूछो क्या तुम घड़ी को जानते हो ? वह बतायेगा 'नहीं जानता हूँ।' तो उसे घड़ी के न जानने का अर्थात् घड़ी के अज्ञान का ज्ञान तो है ही। इस तरह ज्ञान अपने विरोधी अज्ञान के साथ रह लेता है।

जिस प्रकार 'अस्ति' (है, सत्ता) अनादि और अनन्त है, उसी प्रकार 'भाति' (भान-ज्ञान-स्फुरण) भी अनादि और अनन्त है। इसके लिये पहले आप यह समझ लीजिये कि जैसे शब्द ज्ञान, स्पर्शज्ञान, रूपज्ञान, रसज्ञान, गन्धज्ञान, घटज्ञान, पटज्ञान में शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, घट (घड़ा) पट (वस्त्र) भिन्न-भिन्न वस्तुएँ हैं, ज्ञान, ज्ञान, ज्ञान में किसी प्रकार का भेद नहीं है। इससे यह साबित होता है कि वस्तु के भेद से ज्ञान भिन्न नहीं होता। अर्थात् वस्तु अनेक होने पर भी ज्ञान एक ही होता है। इसी प्रकार वस्तु की उत्पत्ति और वस्तु के नाश से ज्ञान में उत्पत्ति और नाश का भ्रम ही होता है, ज्ञान की उत्पत्ति या उसका नाश नहीं होता। पहले बता ही चुके हैं कि जानाति, इच्छति, करोति—पहले जानता है, फिर

चाहता है, फिर करता है तो बिना जाने वस्तु की उत्पत्ति ही सम्भव नहीं। इसलिये ज्ञान अनादि है। अब यदि किसी वस्तु के नाश का ज्ञान न हो तो नाश बेकार। नाश का ज्ञान हो तो नाश की सिद्धि हो। नाश के बाद भी ज्ञान रहता है। इस तरह वस्तु के भाव और अभाव की सिद्धि जिससे होती है वह ज्ञान है। ज्ञान अनन्त काल तक रहता है। घड़ी टूट जायगी, फूट जायगी, जल जायगी, पानी में गल जायगी, लेकिन घड़ी का ज्ञान न टूटेगा, न फूटेगा, न जलेगा, न गलेगा अपि तु बना ही रहेगा।

अस्ति और भाति के समान प्रिय (सुख) भी भगवान् का रूप है। घड़ी प्रिय है, वस्तु प्रिय है, पुत्र प्रिय है, मित्र प्रिय है, ऐसा आप कहते हैं। घड़ी, पुस्तक, पुत्र, मित्र इन सबके साथ प्रिय अर्थात् सुख जुड़ा हुआ है। जैसे 'है' अपने विरोधी 'नहीं' के साथ और ज्ञान अपने विरोधी अज्ञान के साथ जुड़ा हुआ है, वैसे ही सुख भी अपने विरोधी दुःख के के साथ भी जुड़ा हुआ है।

'दुःख प्रिय है' ऐसा सीधा-साधा समझ में नहीं आता, फिर भी सुख-प्राप्ति के लिये व्यक्ति कितना दुःख उठाता है ! दुःखद समझी जानेवाली वस्तुएँ भी अनुकूल होने पर सुखद बन जाती हैं। चन्दन-कुंकुम और कण्टकादि जाति, कालादि की अपेक्षा से सुख-दुःखादि में कारण बनते हैं—"यदि पुनः एतएव सुखादिस्वभावा भवेयुः, ततः स्वरूपत्वात् हेमन्तेऽपि चन्दनः सुखः स्यात्, नहि चन्दनः कदाचित् अचन्दनः। तथा

निदाघेऽपिकुंकुमपङ्कः सुखो भवेत् नहि असौ कदाचित् अकुंकुमपङ्क इति, एवं कण्टकः क्रमेलकस्य सुख इति मनुष्यादीनामपि प्राणभृतां सुखः स्यात्, नहि असौ असौ कञ्चित्प्रत्येव कण्टक इति। तस्मात् असुखादिस्वभावा अपि चन्दन-कुंकुमादयो जातिकालावस्थाद्यपेक्षया सुखदुःखादिहेतवो न तु स्वयं सुखादि स्वभावा इति रमणीयम्।" (भामती)

छोटा-सा काँटा चुभ जाय तो दर्द होने लगता है। पूछो, कैसा दर्द हो रहा है?', 'मीठा-मीठा।', दर्द और मीठा? आजकल के दर्दे दिल नवयुवकों से पूछो तो वे बतायेंगे कि दर्द में कैसी मिठास है? काँटा दुःख या सुख? नाम सुनकर ही माथा ठनकता है। पर एक काँटे की नहीं लाखों काँटे की बाड़ किसान लोग लगाते हैं। पड़ोसी यदि उनमें से एक काँटे की झाड़ ले जाय तो लट्ठ चल जाय? अब बताओ किसान के लिये वे काँटे सुख हैं या दुःख? झरबेरी का जो पाला होता है, आये दिन आपके गाय-बैल उसे कितने प्रेम से पाते हैं, जितने प्रेम से हम आप पापड़ पाते हैं। नीम का पत्ता हमको आपको कितना कड़ुआ लगता है, लेकिन ऊँट उसे कितने चाव से खाता है? उसके लिये वह कितना सुखप्रद है? कुंकुम का लेप गर्मी में दुःखद और सर्दी में सुखद होता है। चन्दन का लेप सर्दी में दुःखद और गर्मी में सुखद होता है। इस तरह संसार के प्रत्येक पदार्थ में भगवान् के अस्ति-भाति-प्रिय ये तीनों रूप विद्यमान हैं।

संसार की प्रत्येक वस्तु में जहाँ 'है', 'ज्ञान', 'सुख'

भगवान् के स्वरूप जुड़े हुए हैं, वहाँ अपना नाम और रूप भी। उदाहरण के लिये घड़ी में पाँचों चीजें हैं। घड़ी है, घड़ी का ज्ञान, घड़ी से सुख, 'घड़ी' यह नाम और घड़ी का रूप। इनमें है, ज्ञान और सुख का तो नाश नहीं होता, किन्तु नाम-रूप का नाश हो जाता है। घड़ी अभी हाथ से गिरी और खतम हो गयी; चश्मा हाथ से गिरा और खतम हो गया। रही बात नाम की तो कितने ही देश के लाड़ले लाल नोनिहाल शहीद हुए, नेता हुए लेकिन आज इनका कोई नाम लेवा, पानी देवा नहीं। हाँ यह बात दूसरी है कि कुछ के जन्म दिन पर उनके फोटो पर फूल माला भले ही कोई चढ़ा दे। इन्द्र, यम, कुबेर इन सबके छक्के छुड़ाने वाले हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्ष-रावण आदि ऐसे पराक्रमी हुए कि सारी दुनिया एक तरफ और वे अकेले सबको जीतने में समर्थ, पर आज उनका न नाम है और न रूप ही। आप कह सकते हैं कि कंस, दुर्योधन, रावण, हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्ष इन सबका नाम आप ले रहे हैं फिर 'नाम खतम हो जाता है' यह कैसे कहते हैं? हम पूछते हैं, 'आप इतने सज्जन बैठे हैं, इनमें कंस, रावण, हिरण्यकशिपु किसी का नाम है क्या?' इतनी माइयाँ बैठी हैं इनमें शूर्पणखा, केकई किसीका नाम है क्या? हो गया न, नाम खतम! हाँ रामचन्द्र, कृष्णचन्द्र, हरिश्चन्द्र ये सब नाम हैं, पर रावण, कंस ये सब नाम नहीं। 'रूप (वस्तु-व्यक्ति) के नष्ट हो जाने पर भी नाम कुछ दिनों तक चलता है' इससे भी यही सिद्ध होता है कि वस्तु 'नाम मात्र' (मिथ्या) है।

दूसरा कारण यह भी है कि वस्तु का नाश हो जाने पर भी उसका ज्ञान बना रहता है। यह नियम है कि किसी भी विषय का प्रत्यय (बोध, ज्ञान) क्यों न हो, उसमें शब्द (नाम) का अनुवेध (योग) अवश्य होता है, अतः वस्तु के न रहने पर भी शब्दात्मक नाम उस बोध में जुड़ा रह सकता है,

'न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते।
अनुविद्धमिवज्ञानं सर्वं शब्देन भासते॥

(वाक्यपदीय १-१२३)

(५) भगवान् आँखों से दीखता नहीं, पर आँखों को देनेवाला वही

ऐसे जो अस्ति-भाति-प्रिय रूप अर्थात् सच्चिदानन्द स्वरूप भगवान् हैं, वे मन, वाणी के विषय नहीं हैं—

"यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह"

(तैत्तिरीय २-४

"न तत्रचक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो
न विद्मो न विजानीमः"

(केनोप० १-३)

भगवान् के विराट रूप (विश्वरूप) को भी अर्जुन इन लौकिक-चर्मचक्षुओं से नहीं देख पाये। भगवान् ने उन्हें दिव्य चक्षु प्रदान किया—

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम्।

(भगवद्गीता ११-८)

भगवान् में न गन्ध है, न रस है, न रूप है, न स्पर्श है, न शब्द है; फिर वे नाक, जीभ, आँख त्वक्, कान के द्वारा कैसे अनुभव किये जा सकते हैं—

"अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथा रसं नित्यमगन्धवच्चयत्।
अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं निचाय्य तन्मृत्यु मुखात्प्रमुच्यते।"

(कठोपनि० १-३-१५)

सगुण-साकार भगवान् श्रीकृष्ण की वंशी का शब्द भी गोपियों को और प्रेमी गायों, वृक्षों और यमुना आदि को ही सुनाई पड़ता था—आकृष्ट करता था, सबको नहीं। भगवान् ने हमें कृपा कर आँख, नाक कान, हाथ, पाँव दिया है, देव दुर्लभ मनुष्य शरीर दिया है, बुद्धि दी है, प्राण दिया है। पुरुषार्थ सिद्धि में विशेषकर भगवत्प्राप्ति में इनका उपयोग करें, इसी में इनकी सार्थकता है—

"अक्षण्वतां फलमिदं न परं विदामः
सख्यः पशूननु विवेशयतोर्वयस्यैः।
वक्त्रं व्रजेशसुतयोरनुवेणु जुष्टं
यैर्वा निपीतमनुरक्तकटाक्षमोक्षम्॥"

(भागवत० १०-२१-७)

"अरी सखी! हमने तो आँखों वाले के जीवन की और उनकी आँखों की बस यही-इतनी सार्थकता समझी है कि जब श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण और गौरसुन्दर बलराम ग्वाल-बालों के साथ गायों को हाँककर वन में ले जा रहे हों या लौटाकर

ब्रज में ला रहे हों, उन्होंने अपने अधरों पर मुरली धारण कर रक्खी हो और प्रेमभरी तिरछी चितवन से हमारी ओर देख रहे हों, उस समय हम उनकी मुख माधुरी का पान करती रहें।"

"बुद्धीन्द्रियमनःप्राणान् जनानामसृजत्प्रभुः ।
मात्रार्थं च भवार्थं च आत्मनेऽकल्पनाय च ।"

(भागवत १०-८७-२)

"भगवान् ने जीवों के लिये बुद्धि, इन्द्रिय, मन और प्राणों की सृष्टि की है। इनके द्वारा वे स्वेच्छा से अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष का अर्जन कर सकते हैं।"

भगवान् के प्रति कृतज्ञ होना चाहिये। जिसके पास कुछ भी नहीं है, न मकान है, न जमीन है, न जायदाद है, न दुकान है, न खेत है, न खलिहान है, न पैसा है, न टका है, न जेवर है, न बैंक बेलेन्स है, न सोना है, न चाँदी है जो टंठनपाल-मदनगोपाल हैं, रुण्ड-मुण्ड-लुंज-पुंज हैं, उन्हें इस हालत में भी नहीं कहना चाहिये कि भगवान् ने हमको कुछ नहीं दिया। क्योंकि आँख-नाक-कान इन सबकी संसार में कोई कीमत नहीं। यदि इस देव-दुर्लभ साढ़े तीन हाथ के मनुष्य शरीर का उपयोग करें तो जन्म-मरण का बन्धन छूट जाय। इसलिये भगवान् के प्रति सदा कृतज्ञ रहना चाहिये, कभी स्वप्न में भी उन्हें कोसना नहीं चाहिये।

लोग कहते हैं—'महाराज? देखो वैज्ञानिकों की करामात, लोक-लोकान्तरों में जाने के लिये राकेट बना दिया इन्होंने।'

हम कहते हैं—'राकेट बनानेवालों से पूछो कि तुम राकेट तो बना सकते हो, पर राकेट बनाने वाले की बुद्धि भी बना सकते हो क्या? बुद्धि का बनानेवाला एक मात्र अनन्त कोटि ब्रह्माण्डनायक सर्वाधिष्ठान-सर्वज्ञ-सर्वशक्तिमान् भगवान् के सिवा और कौन हो सकता है? उस भगवान् के प्रति वफादार होना चाहिये, न कि अहसान फरामोश।'

ये सब चीजें जिन्हें हम गिना चुके हैं, इनकी कोई कीमत है क्या? मनुष्य के ऊपर जब संकट आये, पैसे की जरूरत हो, पैसा प्राप्त न हो तो मकान बेच लेगा, खेत बेच लेगा, सोना-चाँदी-जेवर यहाँ तक कि कपड़े-लत्ते तक बेच लेगा, पर क्या वह आँख बेच लेगा? उससे कोई कहे—'क्यों दुःख पा रहे हो, दस हजार लो और अपनी आँख बेच दो। लेकिन भूखों मरने वाला गरीब-से-गरीब भी आँख बेच सकता नहीं। अर्थात् भगवान् की ओर से यह अमूल्य निधि हमको आपको प्राप्त है। साथ ही यह भी समझो कि अकारणकरुण करुणा-वरुणालय-दीनबन्धु-दीनानाथ-जगन्नाथ विश्वनाथ भगवान् न दें तो दुनिया में इन चीजों को देनेवाला कोई नहीं और देकर छीन लें तो कोई फिर देनेवाला नहीं। आजकल लोग मरते समय नेत्रदान करते हैं। ब्यावर के मुकुटविहारीलाल भार्गव हमारे बड़े भक्त थे। हमने उनसे कहा—"वकील साहब! अपनी आँखों की चिकित्सा क्यों नहीं करवाते? आप कहें तो मैं किसी अपने भक्त को तैयार करूँ, जो आपको नेत्र दान दे!"

उन्होंने कहा—'मैंने डाक्टरों से पूछ लिया, नेत्रदान करने पर भी मेरी आँखों में रोशनी आनेवाली नहीं।'

इस तरह आँख, कान आदि भगवान् ही दे सकते हैं। भगवान् छीन लें तो दूसरा कोई देनेवाला नहीं।

भगवान् परम दयालु हैं। वे नास्तिकों की भी उपेक्षा नहीं करते। एक भगवान के परम भक्त थे। उन्होंने देखा—'भगवान् चौबीसों घण्टे काम करते हैं, कभी आराम नहीं कर पाते। अनन्तानन्त कोटि ब्रह्माण्ड के अनन्तानन्त जीवों के अनन्तानन्त कोटि जन्मकर्मों को जानकर फिर उन्हें सूकर-कूकर-देव-दानव-मानव-यक्ष-राक्षस-किन्नर-भूत-प्रेत-पिशाच योनियों में भेजना, फिर उनके मारने की व्यवस्था करना—अमुक हवाई जहाज में जाते हुए मरेगा, अमुक जलकर मरेगा, अमुक टेक्सी में मरेगा, अमुक रेल से कट कर मरेगा, अमुक पानी में डूबकर मरेगा, अमुक मकान से गिरकर मरेगा, अमुक खटिया पर छह महीने पड़ा-पड़ा सड़कर मरेगा, यह सब भगवान् का विचित्र काम है। वे अनन्तानन्त ब्रह्माण्ड के उत्पादन, पालन और संहरण में लगे रहते हैं।'

भक्त से रहा न गया। भक्त ने भगवान् से कहा—'भगवन्! कुछ समय के लिये यह सब जिम्मेदारी मुझे सौंप दें, आप आराम करें।'

भगवान् भक्त का आग्रह कैसे टालते। उन्होंने एक दिन के लिए सबको भोजन देने की जिम्मेदारी सौंप दी। भक्त

ने बड़ी तत्परता से सभी प्राणियों की देख भाल की। यथा योग्य व्यवस्था की। सायंकाल भगवान् ने पूछा—'भक्तराज! सभी काम ठीक ढंग से किया? सबको भोजन दिया?'

भक्तराज ने कहा—"हाँ भगवन्! सबकी यथा योग्य व्यवस्था है।" इतने में हजारों आदमी चिल्लाने लगे—'हम भूखे हैं, हमें आज भोजन नहीं मिला।' भगवान् ने कहा—'भक्तराज यह क्या हुआ?', भक्त ने कहा—ये तो नास्तिक हैं। आपको गाली देने वाले, आपका खण्डन करने वाले हैं। इनको मैं भोजन कैसे देता?', भगवान् ने कहा—"तभी तो कहा था। मेरा काम और कोई नहीं कर सकता। मैं तो अपने विरोधियों को भी भोजन भी देता हूँ और अपने खण्डन की बुद्धि प्रदान करता हूँ। अब कभी आग्रह मत करना। मेरा काम मैं ही कर सकता हूँ।"

श्री राम जय राम जय जय राम।
श्री राम जय राम जय जय राम॥

સમરીતિર્મહાતેજાઃ પરબ્રહ્મ સનાતનઃ।
જયનારાયણજીનાથો વેદવેદ્યો મહાનિધિઃ॥
ankurnagpal108@gmail.com

५—ईश्वर के अस्तित्व की पुष्टि और अवतारवाद की सिद्धि

(१) ईश्वर के आलम्बन से ही भय की निवृत्ति

परमात्मा की ऐसी विचित्र माया है कि कितना ही नास्तिक हो, धर्म और भगवान् को न मानने में ही जिसने अपनी बुद्धि और शक्ति (सामर्थ्य-बल) को खर्च किया हो अवसर आने पर उसे भी धर्म और भगवान् को मानना पड़ता है—परलोक और परमात्मा के अस्तित्व में आस्था करनी पड़ती है। सत्य घटना सुनाते हैं। लगभग चालीस वर्ष पूर्व पूज्य पाद धर्मसम्राट श्रीयतिचक्रचूडामणि स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज गङ्गा-तरंग वाराणसी में विराजते थे। लगभग तीन बजे का समय था। पंडित गङ्गाशङ्कर मिश्र भी वहीं विद्यमान थे। एक महाशय आये। उन्होंने 'ईश्वर है या नहीं ?' इस विषय को उठाया। श्रीमहाराज ने कहा—'पहले आप ही अपना मन्तव्य व्यक्त करें। लोग आश्चर्य में पड़ गये। उस महाशय ने पूरे तीन घण्टे तक तर्क-युक्तियों द्वारा समस्त ईश्वरवादियों के ईश्वर का खण्डन किया। नैयायिकों द्वारा मान्य ईश्वर का खण्डन किया, योगियों द्वारा मान्य ईश्वर का खण्डन किया। वेदान्तियों में शङ्कर, रामानुज, निम्बार्क, मध्व, वल्लभ और शैव-शाक्त आदिकों द्वारा मान्य ईश्वर का खण्डन किया,

ईसाइयों और मुसलमानों द्वारा मान्य ईश्वर का खण्डन किया। हमलोगों को सुनते-सुनते आश्चर्य हो रहा था। अन्त में उसने कहा—'अब आप हमारे इन तर्कों-युक्तियों का उत्तर दीजिये ? ईश्वर है तो उसकी सिद्धि कीजिये !', हमलोग सोच रहे थे। तीन से छह बजे तक पूरे तीन घण्टे तो इसने लिये। अब इसकी एक-एक बात का उत्तर देने को कम-से-कम छः घण्टे श्री महाराज को चाहिये। आज रात भर यही कथा चलेगी। परन्तु महाराज श्री ने कुछ उत्तर नहीं दिया। जब उसने बहुत आग्रह किया तब उन्होंने कहा—"तुमने सारी उम्र परिश्रम करके युक्ति-तर्क-प्रमाणों के द्वारा जब यह दृढ़ निश्चय कर लिया कि ईश्वर नहीं है तो ईश्वर न सही, अब तुमको इस बात की चिन्ता ही क्यों है कि ईश्वर है या नहीं ? ठीक है तुम अपने विश्वास के अनुसार ईश्वर को मत मानो। क्या जरूरत है तुमको जो तुम पूछते हो कि भगवान् है या नहीं ?'

महाराज श्री के ऐसा कहने पर बहुत डरते-डरते उस व्यक्ति ने कहा "यह सत्य है कि मैंने सारा जीवन 'ईश्वर नहीं है', इस बात को सिद्ध करने में व्यतीत कर दिया. लेकिन कभी-कभी मेरी नींद टूट जाती है और यह डर होता है कि कहीं ईश्वर हुआ तो मेरा तो बन्टाढार हो जायगा।"

महाराज श्री ने कहा—"ईश्वर के होने में सबसे बड़ा यही प्रमाण है। युक्ति-तर्क आदि के द्वारा इतना दृढ़ निश्चय

होने पर भी तुमको ईश्वर का भय होता है, जो नहीं है उसका भय तो होना नहीं चाहिये।"

हमने कहा—"एक ही बात में इसके तीन घण्टे के सभी कुतर्कों का उत्तर हो गया।"

महाराज श्री ने कहा—"अगर तुम चाहो तो अपनी प्रत्येक बात का उत्तर भी ले सकते हो। तुम आध घण्टे में चाहो तो आध घण्टे में और तीन घण्टों में चाहो तो तीन घण्टों में—जितनी देर में चाहो उतनी देर में उत्तर ले सकते हो। लेकिन तुम्हारा मन भयभीत रहता है, इससे सिद्ध होता है कि जिसे न मानते हुए भी डरते हो, वह ईश्वर अवश्य है। उसके आलम्बन से ही भय की निवृत्ति सम्भव है।"

(२) नास्तिकों को भी आस्तिक बनाने वाली 'घोर विपत्ति'

सन् १९३४ के फरवरी महीने में भूकम्प आया। पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल, चीन और जापान का बहुत कुछ हिस्सा क्षतिग्रस्त हुआ। इतना भयंकर था वह भूकम्प कि बिहार तो प्रायः तबाह हो गया। दशाश्वमेध घाट पर ईसाइयों का सैन्टर था। वहाँ सायं ३ से ६ बजे तक तरह-तरह के विचारक इकट्ठे होते थे। प्रायः नास्तिक वहाँ अधिक जाया करते थे। भगवान् को लेकर खण्डन-मण्डन ही चल रहा था कि भूकम्प प्रारम्भ हुआ। मकान झूले की तरह झूलने लगे। दीवालें चटकने लगीं। ऐसा लगता था कि अब गिरने ही वाली हैं। बहस-मुबायसा करने वालों में नास्तिक जो हिन्दू थे बहस,

छोड़कर 'राम-राम' करने लगे। नास्तिक मुसलमान 'अल्ला-अल्ला' या 'खुदा-खुदा' और ईसाई लोग 'गॉड-गॉड' करने लगे। हम भी बैठे थे। हमने कहा—"भैया यह क्या कर रहे हो? अरे यहाँ से भागने की चेष्टा करो, बचने की चेष्टा करो। अभी तुम कह रहे थे—न कोई राम है न रहीम और न खुदा है न अल्ला, और न गॉड ही। अब तुम राम-रहीम-खुदा और गॉड को क्यों पुकारने लगे?"

वे कहने लगे—"महाराज? भागकर कहाँ जायेंगे?"

हमने कहा—"गंगाजी में चले जाओ।"

उन्होंने कहा—"अरे महाराज? बह जायेंगे! बह जायेंगे।"

तो कहने का अभिप्राय यह कि जब संकट आता है तब नास्तिक भी आस्तिक हो जाते हैं, झख मारकर भगवान् को मानने लगते हैं। तभी तो कहा है—

"दुःख में सुमिरन सब करें, सुख में करे न कोय।
जो सुख में सुमिरन करे तो दुःख काहे को होय।"

जब दुःख आकर दबाता है और उसके निवारण का कोई उपाय नहीं दीखता, तब नास्तिक से नास्तिक भी भगवान् का स्मरण करता है।

(३) सब प्रकार के बल, वैभव और पराक्रम को विफल होता देखकर रावण भी 'राम (ईश्वर)—विश्वासी'

आप सब जानते हैं कि रावण-कुम्भकर्ण आदि भगवान् को नहीं मानते थे। कलिपावनावतार-भक्तशिरोमणि-संत-

शिरोमणि-कविकुल चूड़ामणि हमारे तुलसीदास के अनुसार रावण राम-लक्ष्मण को 'तपसी-तापस' कहा करता था, पर मरते समय उसके मुँह से 'राम' निकला। खर-दूषण के मरने के बाद उसने राम को भगवान् मानना प्रारम्भ किया—

"मम पुर बस तपसिह्न पर प्रीति।
सठ मिलु जाइ तिन्हहि कहु नीति ॥"

(रामचरित मानस ५-४१-५)

"भूमि परा कर गहत अकासा।
लघु तापस कर बाग बिलासा ॥"
"अंगद तहीं बालि कर बालक।
उपजेहु बंस अनल कुल घालक ॥
गर्भ न गयहु व्यर्थ तुम्ह जाहु।
निज मुख तापस दूत कहायहु "

(रामचरित मानस ६-२१-५-६)

"खर दूषण मो सम बलवंता।
तिन्हहि को मारइ बिनु भगवन्ता।"

(रामचरित मानस ३-२३-२)

"गर्जेउ मरत घोर रव भारी।
कहाँ राम रन हतौं पचारी ॥"

(रामचरित मानस ६-१०३-४)

वाल्मीकि-रामायण-युद्धकाण्ड के अनुसार धूम्राक्ष, वज्रदंष्ट्र, अकम्पन, प्रहस्त, नरान्तक, देवान्तक, त्रिशिरा, महोदर, महापार्श्व आदि रावण के परम सहयोगी सेनापति

मारे गये। अन्त में अतिकाय जिसका शरीर कुम्भकर्ण से कुछ ही हलका था, जिसे देखते ही वानरों ने सोचा—कुम्भकर्ण फिर जिन्दा हो गया है, वह भी मारा गया। तब रावण ने कहा—"मैंने विभीषण, माल्यवन्त प्रहस्त आदि की बात नहीं मानी—इसलिये मुझे इतना दुःख हुआ रामचन्द्र स्वयं नारायण हैं'—

'यस्य विक्रममासाद्य राक्षसा निधनं गताः।
तं मन्ये राघवं वीरं नारायणमनामयम् ॥'

(वाल्मीकिरामायण युद्धकाण्ड ७२-११)

(४) ईश्वर-खण्डन में संलग्न नास्तिक भी प्रकारान्तर से ईश्वर चिन्तक होने के कारण ईश्वरानुग्रह के पात्र ही

उदयनाचार्य 'न्याय कुसुमांजलि' नामक ग्रन्थ में समारोह पूर्वक ईश्वर को सिद्ध करते हैं। ईश्वर को न मानने वाले कई दार्शनिक हैं।

उनमें पहला दार्शनिक चार्वाक है। जिसका मत हमने आपको सुनाया था कि संसार का बनाने वाला कोई ईश्वर नहीं है, यह अपने आप बन जाता है। जीव को भी स्वरूप से चेतन मानने की आवश्यकता नहीं है। चेतन से जड़ पदार्थों की या संसार की उत्पत्ति नहीं होती। पृथ्वी, जल, तेज और वायु चारभूत इस मत में मान्य हैं। भूत-चतुष्टय के योग से चैतन्य उत्पन्न हो जाता है।

दृश्यमाने विनाशे च प्रत्यक्षे लोकसाक्षिके।
आगमात् परमस्तीति ब्रुवन्नपि पराजितः ॥

अनात्मा ह्यात्मनो मृत्युः क्लेशोमृत्युजरामयः।
आत्मानं मन्यते मोहात् तदसम्यक् परं मतम्॥
अथ चेदेवमप्यस्ति यल्लोके नोपपद्यते।
अजरोऽयममृत्यश्च राजासौ मन्यते यथा॥

(महा० शान्ति० २१८-२३-२५)

चार्वाक ऐसा मानते हैं कि शरीररूपी आत्मा का विनाश प्रत्यक्ष देखा जा रहा है। सम्पूर्ण लोक इसका साक्षी है (सभी इस बात को जानते हैं)। फिर भी यदि कोई शास्त्र प्रमाण की ओट लेकर देह से भिन्न आत्मा की सत्ता का प्रतिपादन करता है तो वह परास्त है; क्योंकि उसका कथन लोकानुभव के विरुद्ध है। शरीर का अभाव होना ही आत्मा की मृत्यु है। शरीर का आंशिक विनाश तो दुःख और वृद्धावस्था को लेकर भी है, ये सभी आत्मा के नाश ही हैं। ऐसा होने पर भी जो लोग आत्मा को देह से भिन्न मानते हैं, उनकी यह मान्यता अत्यन्त असंगत ही है। लोक विरुद्ध होने पर भी आत्मा को देह से भिन्न अजर-अमर मानना उसी प्रकार अर्थवाद है, जिस प्रकार बन्दीजन द्वारा राजा को अजर-अमर बताना।

रेतो वटकणीकायां घृतपाकाधिवासनम्।
जातिः स्मृतिरयस्कान्तः सूर्यकान्तोऽम्बुभक्षणम्॥

(महा० शान्ति० २१८-२६)

"जैसे वटवृक्ष के बीज से पत्र, पुष्प, फल, मूल तथा त्वचा आदि और गाय के द्वारा खायी हुई घास में से घी, दूध आदि उत्पन्न होते हैं; जैसे गुड़ आँटा या महुवे आदि अनेक द्रव्यों

के संयोग द्वारा जो मद्य तैयार किया जाता है, उसमें उपादान की अपेक्षा अधिक मादकता-शक्ति का जन्म हो जाता है, वैसे ही पृथ्वी, जल, तेज और वायु—इन चार द्रव्यों के संयोग से इस शरीर में ही जीव-चैतन्य प्रकट हो जाता है। जैसे जड़ मन से अजड़ स्मृति उत्पन्न होती है, वैसे ही शरीर जड़ शरीर से चेतन जीव की उत्पत्ति होती है। जैसे अयस्कान्तमणि (चुम्बक) जड़ होकर भी लोह को खींच लेती है; वैसे ही जड़ शरीर भी इन्द्रियों का संचालन और नियमन कर लेता है; अतः आत्मा देह-भिन्न नहीं है। जैसे सूर्यकान्त-मणि शीतल होकर भी सूर्य की किरणों के योग से आग प्रकट करने लगती है, उसी प्रकार वीर्य शीतल होकर भी रस और रक्त के संयोग से जठरानल का आविष्कार करता है और जैसे जल से उत्पन्न हुआ वड़वानल जल को ही भक्षण करता है, उसी प्रकार वीर्य से उत्पन्न हुआ यह शरीर स्वयं कभी वीर्य का आधान और उसे धारण करता है; अतः शरीर से भिन्न आत्मा नहीं।"

ईश्वर को न मानने वालों में दूसरा दार्शनिक जैन है। इसके अनुसार कोई अनादि सिद्ध ईश्वर नहीं है। जीव अनन्त अवश्य है। जैसे घड़े में दीपक के अवयव संकुचित और घर में विकसित होते हैं, वैसे जीव-अवयव भी छोटे-बड़े शरीरों में जाकर संकुचित और विकसित होते हैं। इस मत में जीव, अजीव, आस्रव, संवर, निर्जर, बन्ध और मोक्ष इस प्रकार सात पदार्थ हैं। संक्षेप से तो जीव और अजीव नाम के दो ही

पदार्थ हैं, अन्यों का इन्हीं दोनों में समावेश हो जाता है। दोनों का विस्तार जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय इन पाँच रूपों में होता है। जो 'अस्ति' (है) शब्द से कहा जाता है, वह आस्तिकाय है। जीव तीन प्रकार के हैं—(१) बद्ध, (२) मुक्त और (३) नित्य सिद्ध। पुद्गल छः प्रकार के हैं (१) पृथ्वी (२) जल, (३) तेज, (४) वायु, (५) वृक्षादिस्थावर, (६) मनुष्यादि जङ्गम। सम्यक् (अच्छी) प्रवृत्ति से धर्म का अनुमान होता है। जीव जो कि स्वभाव से ऊर्ध्वगमनशील है, उसकी देह में स्थिति का हेतु 'अधर्म' है। आवरण का अभाव 'आकाश' है। ऊर्ध्व लोकान्तरों में विद्यमान आकाश 'लोकाकाश' है। सर्वोच्च मोक्ष स्थान अलोकाकाश है। यह केवल मुक्त पुरुषों का आश्रय स्थान है। मिथ्या प्रवृत्ति 'आस्रव' है। सम्यक् प्रवृत्ति 'संवर' और 'निर्जर' है। विषयों के अभिमुख इन्द्रियों की प्रवृत्ति 'आस्रव' है अथवा कर्मों का नाम 'आस्रव' है। शम, दम आदि प्रवृत्ति 'संवर' है। विषयों में इन्द्रियों की प्रवृत्ति का संवरण (निवारण) होने से 'संवर' नाम है। पुण्य-पापरूपी अनादि काल के कषायों (मलों) का जो नाश करे वह 'निर्जर' है। तप्त आरोहण, केशों का लुंचनादि 'निर्जर' कहा जाता है। जन्म देकर बन्धन में डालने वाले आठ प्रकार के साधु-असाधु कर्म 'बन्ध' हैं। समस्त क्लेश कर्म पाश का नाश कर ज्ञान द्वारा सबके ऊपर अलोकाकाश में सतत सुखपूर्वक स्थिति 'मोक्ष' हैं।

तीसरा नास्तिक बौद्ध है। बौद्ध भी चार प्रकार के हैं—(१) वैभाषिक-बाह्यार्थप्रत्यक्षवादी, (२) सौत्रान्तिक-बाह्यार्थानुमेयवादी, (३) योगाचार-विज्ञानवादी, (४) माध्यमिक-शून्यवादी। इन चारों के मतों का स्वरूप इस प्रकार है—

"मुख्यो माध्यमिको विवर्तमखिलं शून्यस्य मेने जगत्,
योगाचारमते तु सन्ति मतयस्तासां विवर्तोऽखिलः।
अर्थोऽस्तिक्षणिकस्त्वसावनमितो बुद्ध्येति सौत्रान्तिकः,
प्रत्यक्षं क्षणभंगुरं च सकलं वैभाषिको भाषते॥"

"मुख्य माध्यमिक के मत में यह सम्पूर्ण जगत् शून्य का विवर्त है। योगाचार-मत में विज्ञान अनेक हैं, उनका ही विवर्त यह सम्पूर्ण जगत् है सौत्रान्तिक के मत में बाह्यार्थ (बाह्यविषय) क्षणिक हैं और वह बुद्धि (ज्ञान) से अनुमित हैं। वैभाषिक के मत में यह सब क्षणिक है और प्रत्यक्ष है।"

वैभाषिक के मत में संसार सत्य है और निर्वाण (मोक्ष) सत्य है। माध्यमिक के मत में संसार असत्य है और निर्वाण असत्य है। योगाचार के मत में संसार असत्य है और निर्वाण सत्य। सौत्रान्त्रिक के मत में संसार सत्य है और निर्वाण असत्य है।

वेदों को प्रमाण मानने वाले आस्तिक दार्शनिकों में सांख्य और प्राचीन पूर्व मीमांसक 'ईश्वर' नहीं मानते।

सांख्यवादी सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणों की साम्यावस्था को 'प्रधान' कहते हैं। महत्तत्त्व, अहं, मन,

पञ्चज्ञानेन्द्रिय, पंचकर्मेन्द्रिय, शब्दादि पंचतन्मात्रा और आकाशादि पंचभूत ये सांख्योक्त चौबीस तत्त्व त्रिगुणात्मक प्रधान के कार्य हैं। पच्चीसवाँ तत्त्व पुरुष चेतन है। कार्य कारण में विकार लाये बिना उत्पन्न नहीं हो सकता। विकारी कोई जड़ पदार्थ ही हो सकता है। संसार में सुख-दुःख और मोह की अनुगति है, अतः त्रिगुणात्म प्रधान का क्रमिक परिणाम ही प्रपंच होना चाहिये। जो जड़ होता है, वह चेतन से युक्त होता है, जैसे रथ सारथि से युक्त होता है ; वैसे ही जड़ प्रधान भी चेतन पुरुष से युक्त होना चाहिये। जिस सत्त्वगुण के अत्यन्त उत्कर्ष होने पर देह और इन्द्रिय युक्त पुरुष योगी सर्वज्ञ कल्प होता है ; उस सत्त्वगुण का अत्यन्त उत्कर्ष प्रधान में है, अतः वह सर्वज्ञ हो सकता है। महदादि कार्य की अपेक्षा प्रधान में सर्वशक्तिमत्ता भी हैं हीं। पुरुष कमल के पत्ते के समान निर्लेप है। उसके भोग और मोक्ष के लिये प्रधान (प्रकृति) की सृष्टि-रचना में प्रवृत्ति होती है।

पूर्व मीमांसक ऐसा मानते हैं कि 'यजेत स्वर्गकामः' 'स्वर्ग की कामना वाला याग करे' इत्यादि विधि श्रुतियों के अनुसार 'याग स्वर्ग को पैदा करता है' ऐसा जान पड़ता है। याग आदि क्रिया यद्यपि क्षणिक कर्म है, फिर भी कर्म की कोई एक सूक्ष्म उत्तर अवस्था या फल की पूर्व अवस्था 'अपूर्व' है ; उसी से कर्ता को फल की प्राप्ति होती है। घृत-पान या तैल-पान-रूप क्रिया तो नष्ट हो जाती है, फिर भी पुष्टिरूप फल पैदा करने वाली अवान्तर क्रिया (व्यापार) होती है,

इसी प्रकार 'याग' के नष्ट होने पर भी 'अपूर्व' रहता है— ऐसा मानना चाहिये। ईश्वर वादियों का ईश्वर निर्दोष और सम है, फिर भी वह विचित्र फल को कैसे दे सकता है ? ऐसा मानने पर तो उसमें विषमता और निर्दयता रूप दोष की प्राप्ति होती है। ऐसी स्थिति में कर्म ही कर्त्ता को फल देने में समर्थ है, इसके लिये ईश्वर की कोई आवश्यकता ही नहीं है।

ईश्वरवादी आस्तिकों ने इन सभी मतों का क्रमशः युक्ति-युक्त निराकरण कर दिया है। भले ही चेतन देह-बुद्धि-मस्तिष्क आदि में ही प्रतीत हो, फिर भी वह स्वतन्त्र है, देहादि का धर्म नहीं है। भले ही घर, खेत आदि में दिव्य रत्नादि मिलें, फिर भी वे घर-खेत आदि के धर्म नहीं होते। भले ही काठ में आग उपलब्ध हो, फिर भी आग स्वतन्त्र है, काठ आदि का धर्म नहीं है, वैसे ही चेतन नित्य एवं स्वतन्त्र है, वह देहादि का धर्म नहीं है। काष्ठादि के आश्रित दाह और प्रकाशादि क्रिया यद्यपि केवल अग्नि में उपलब्ध नहीं होती, फिर भी दाह, प्रकाशादि क्रिया आग का ही धर्म माना जाता है, क्योंकि आग का संयोग होने से ही काष्ठ आदि में दाह आदि उपलब्ध होता है, आग का संयोग न हो तो नहीं उपब्ध होता। भौतिकवादी भी तो चेतन देह को ही प्रवर्तक मानते हैं। स्वभाववाद का आलम्बन लेने पर सृष्टि-स्थिति-संहार आदि व्यवहार व्यवस्थित नहीं सध सकता। स्वभाव यदि असत् है तब तो उसमें कार्य करने की क्षमता नहीं हो

सकती, यदि सत् है तो भी जड़ होने पर उसमें कार्य करने की क्षमता नहीं हो सकती, यदि चेतन है तब तो नामान्तर से वह ईश्वर ही हुआ।

"समिधामुपयोगान्ते यथाग्निर्नोपलभ्यते।
आकाशानुगतत्वाद्धि दुर्ग्राह्यो हि निराश्रयः॥
तथा शरीरसंत्यागे जीवो ह्याकाशवत् स्थितः।
न गृह्यते तु सूक्ष्मत्वाद् यथा ज्योतिर्न संशयः।"

(महा० शान्ति० १८७-५-६)

"समिधाओं के जलजाने पर अग्नि का नाश नहीं होता। वह आकाश में अव्यक्तरूप से स्थित हो जाती है, इसलिये उसकी उपलब्धि नहीं होती; क्योंकि बिना किसी आश्रय के अग्नि का ग्रहण होना अत्यन्त कठिन है।"

"उसी प्रकार शरीर को त्याग देने पर जीव आकाश की भाँति स्थिर रहता है। वह अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण बुझी हुई आग के समान अनुभव में नहीं आता, परन्तु रहता अवश्य है।"

"प्रेतीभूतेऽत्ययश्चैव देवताद्युपयाचनम्।
मृते कर्मनिवृत्तिश्च प्रमाणमिति निश्चयः॥
नन्वेते हेतवःसन्ति ये केचिन्मूर्ति संस्थिताः।
अमूर्तस्यहि मूर्तेन सामान्यं नोपपद्यते॥"

(महा० शान्ति० २१८-३०-३१)

"मृतक-शरीर में चेतना का अभाव, रोगादि-वारण के लिये देवाराधन में नास्तिकों की भी प्रवृत्ति, न किये हुए कर्मों

के फल का भोग और बिना किये हुए कर्मों का बिना फलोपभोग हुए नाश रूप 'अकृताभ्यागम और कृतविप्रणाश' नामक दोष रूप हेतुओं से देहातिरिक्त आत्मा की सिद्धि होती है। मद्यादिका दृष्टान्त विषम है। मूर्त जड़ से मूर्त की उत्पत्ति परक होने से अमान्य है। मूर्त देह से अमूर्त आत्मा का उत्पत्ति की सिद्धि उक्त दृष्टान्तों से असम्भव ही है। ऐसी स्थिति में देहातिरिक्त आत्मा का अस्तित्व ही उपयुक्त है।"

प्रत्यक्ष से भिन्न अनुमानादि प्रमाण को न मानना पागलपन का ही परिणाम समझना चाहिये। दूसरों का अज्ञान, संशय, दुःख, सुख दूसरे को प्रत्यक्ष प्रमाण से कभी भी विदित नहीं हो सकता। दूसरे के संशय आदि का अनुमानादि से ज्ञान होता है। क्षुधा-निवृत्ति के लिये नियम पूर्वक भोजन में प्रवृत्ति, प्यास निवृत्ति के लिये पानी पीने में प्रवृत्ति बिना अनुमान के कैसे सम्भव है ? इस तरह जब देहातिरिक्त चेतन और प्रत्यक्षातिरिक्त अनुमानादि सिद्ध है तब तो ईश्वर की सिद्धि भी सुगमता पूर्वक हो जाती है।

जीव को देहपरिमाणवाला सावयव मानने पर उसकी अनित्यता सिद्ध होती है। जीव के अनित्य होने पर बन्धन-मोक्ष आदि की व्यवस्था ध्वस्त हो जाती है। इसी प्रकार पुद्गल या परमाणुओं का संयोग मानने पर कार्य में स्थूलता सम्भव नहीं। आंशिक संयोग मानने पर परमाणुओं को सावयव मानना होगा। यह दोष परमाणुवादी वैशेषिकों के पक्ष में है।

सृष्टि के आरम्भ में परमाणुओं का समुदाय अपने आप आप नहीं हो सकता, क्योंकि वह अचेतन है। संघात और विज्ञान परस्पर सापेक्ष होने से विज्ञान भी समुदाय में हेतु नहीं हो सकता। नियामक के बिना समुदाय मानने पर व्यवहार और मोक्ष दोनों का अभाव होगा। यह दोष बौद्धों के पक्ष में है। जैनों के यहाँ भी जीव सावयव होने से अनित्य सिद्ध होगा। वह पुद्गल समुदाय का कर्त्ता या नियामक कैसे होगा?

क्षणिक विज्ञान या उसकी सन्तान (प्रवाह-परम्परा) को मानकर प्रत्यभिज्ञा आदि की सिद्धि नहीं हो सकेगी। शून्यवाद मानने पर अभाव से भाव की उत्पत्ति और वस्तु का निरन्वय नाश मानना होगा।

सांख्योक्त प्रधान जड़ है और पुरुष उदासीन है। पंगु पुरुष भी अन्ध पुरुष को वाणी आदि से प्रवृत्त करता है। परन्तु इस प्रकार पुरुष में कोई भी प्रवृत्तिजनक-व्यापार नहीं है; क्योंकि वह निष्क्रिय और निर्गुण है। चुम्बक के समान सन्निधिमात्र से भी पुरुष प्रधान को प्रवृत्त नहीं कर सकता, क्योंकि सन्निधि के नित्य होने से प्रवृत्ति में भी नित्यता प्राप्त होगी, जबकि चुम्बक की अनित्य सन्निधि होने से उसका व्यापार भी अनित्य होता है। चुम्बक को भी स्वच्छ, सम्मुख और सीधे रखने की अपेक्षा है। इस तरह प्रधान के चेतन और पुरुष के उदासीन होने से दोनों सम्बन्ध कराने वाला कोई नहीं। योग्यता निमित्तक सम्बन्ध मानें तो उसे नित्य मानना होगा, तब मोक्ष असिद्ध होगा।

दृष्ट के अनुसार ही सदैव अदृष्ट की कल्पना की जाती है। लोक में कभी भी ऐसा नहीं देखा जाता कि मिट्टी और चक्र आदि वस्तुएँ अपने आप घट को पैदा कर डालती हों। कर्म और उससे उत्पन्न अपूर्व दोनों जड़ हैं। बिना चेतन के अपने आप प्रवृत्त नहीं हो सकते। चेतन भी कोई अल्पज्ञ जीव नहीं हो सकता। जो कर्म के स्वरूप, भेद और विनियोग का जानकार हो वही हो सकता है। जैसे भव्य महल, नगर आदि को देखकर उसके निर्माता का बोध होता है, वैसे ही कर्मफलदाता देवताओं के चेतन होने का बोध होता है। वह कर्मानुसार फलदाता है, अतः उसमें विषमता या निर्दयतारूप दोष भी नहीं है।

इस तरह—

(१—संसार का व्यवस्थितरूप देखकर अनुमान किया जाता है कि जगत् की व्यवस्था प्रकाशक चेतन-पूर्वक है, व्यवस्था होने के कारण, राज्य व्यवस्था के समाज।

२—सूर्य-चन्द्र किसी विशेष विज्ञानवान् के द्वारा निर्मित हैं, प्रकाश होने के कारण, दीपक के समान, जैसे व्यवहारोप—योगी दीपक आदि हैं, वैसे ही सूर्य आदि भी।

३—सूर्य-चन्द्र आदि नियामक से नियमित हैं, व्यवस्थित चेष्टा वाले होने से, सेवक आदि के समान।)

न्याय कुसुमाञ्जलि में बड़ी सुन्दर-सुन्दर युक्तियों से अपनी सारी बुद्धि का जोर लगाकर श्री उदयनाचार्य ने

भगवान् को सिद्ध किया है। अन्त में उन्होंने श्रीभगवान् से प्रार्थना की कि हे महाराज ? आपको न मानने वालों के जितने मतमतान्तर थे उनका खण्डन कर मैंने आपको सिद्ध किया, फिर भी वज्रहृदय उनकी बुद्धि में आप पर विश्वास न हो तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है; किन्तु हे अशरण शरण-अकारण-करुण करुणावरुणालय-दीन बन्धु-दीनानाथ-अनाथनाथ-जगन्नाथ-विश्वनाथ समय आने पर आप उन्हें पार करना मत भूलना। आप यह मत सोचना कि 'ये तो मेरे विरोधी हैं, दिन-रात मेरा खण्डन करते हैं', हम लोग तो कभी कभी आपको याद करते हैं, वे तो हर समय आपका चिन्तन करते हैं। रात-दिन यही सोचते हैं कि कैसे भगवान् का खण्डन करें—

"इत्येवं श्रुतिनीति संप्लवजलैर्भूयोभिराक्षालिते
येषां नास्पदमादधासि हृदये ते शैलसाराशयाः।
किन्तु प्रस्तुत विप्रतीपविधयाऽप्युच्चैर्भवच्चिन्तकाः
काले कारुणिक त्वयैव कृपया ते तारणीया नराः॥"

(न्याय कुसुमाञ्जलि ५-१७)

अन्त में वे लिखते हैं—

"अस्माकन्तु निसर्गसुन्दर चिराच्चेतो निमग्नं त्वयी—
त्यद्धानन्दनिधौ तथापि तरलं नाद्यापि सन्तृप्यते।
तन्नाथ! त्वरितं विधेहि करुणां येन त्वदेकाग्रतां
याते चेतसि नाप्नुयाम शतशो याम्याः पुनर्यातनाः।"

(न्याय कुसुमाञ्जलि ५-१८)

"हे सहज सुन्दर ? मेरा चित्त तो बहुत समय से आप में ही निमग्न है, यह ठीक है, फिर भी यह चंचल चित्त अभी तृप्त नहीं हुआ है। इसलिये हे नाथ! यथा सम्भव शीघ्र ऐसी कृपा करो जिससे यह चित्त सर्वथा आप में लीन हो जाय, ताकि बार-बार यम-यातना-जन्म-मरण न सहना पड़े।"

(५) भगवत्स्मरण से बढ़कर कोई संपत्ति नहीं और भगवत्विस्मरण से बढ़कर कोई विपत्ति नहीं

इस तरह भगवान् को कितना ही न मानने वाला हो, लेकिन जब उसके ऊपर संकट आता है तो वह भगवान् को याद किये बिना नहीं रहता, संसार में और कोई चारा नहीं। अगर पहले से ही हम भगवान् को याद करते रहें तो संकट ही हम पर न आयें। लोग पूछते हैं, 'संकट के उद्धार का उपाय क्या है ?' हमारे शास्त्रकार कहते हैं

'विपदो नैव विपदः सम्पदो नैव सम्पदः।
विपद्विस्मरणं विष्णोः सम्पन्नारायणस्मृतिः॥"

"दुनियाँ की विपत्ति कोई विपत्ति नहीं है। दुनियाँ की सम्पत्ति कोई सम्पत्ति नहीं है। भगवान् का विस्मरण ही विपत्ति है। भगवान् का संस्मरण ही सर्वोत्कृष्ट संपत्ति है।"

"कह हनुमन्त विपति प्रभु सोई।
जब तब सुमिरन भजन न होई॥

(रामचरित मानस ५-३२-३)

भगवान् को भूल जाना, यह आपत्तियों के पहाड़ को टूट पड़ने के लिये निमन्त्रण देना है। भगवान् का स्मरण

सम्पूर्ण विपत्तियों दुःखों से आधि-व्याधि, शोक-सन्ताप, दीनता दरिद्रता, परतन्त्रता, राग-द्वेष, काम-क्रोध, लोभ-मद-मात्सय, छल-छिद्र-पाखण्ड रूप शत्रुओं से त्राण पाने का एक मात्र उपाय है। भयङ्कर-से-भयङ्कर संकट आप महानुभावों के ऊपर कभी भी आये, सब काम छोड़कर एकान्त में वैठकर दस मिनट भगवान् का स्मरण करो। संकट से उद्धार का आपको उपाय मिल जायगा। हमारे कहने का तात्पर्य यह है कि आप सज्जनों को येन-केन-प्रकारेण भगवान् में विश्वास करना चाहिये। विश्वास पूर्वक भगवान् का चिन्तन, मनन, भजन, पूजन, कीर्तन इनमें से किसी उपाय का भी आप आलम्बन लें तो आप समस्त संसार के दुःखों से छूट सकते हैं।

(६) "हरिः सर्वत्र गीयते"

"पुराण न्याय मीमांसा धर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश॥"

याज्ञवल्क्य स्मृति १-३)

"सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशोमन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं विप्र पुराणं पञ्च लक्षणम्।"

(ब्रह्मवैवर्तपुराण)

पुराण (सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित रूप पञ्चलक्षण लक्षित), न्याय (प्रमाण, प्रमेय के विवेचक गौतमशास्त्र, वैशेषिक, सांख्य, पातञ्जलादि), मीमांसा (पूर्वोत्तर-मीमांसा, क्रमशः १२ और ४ अध्यायों में धर्म और ब्रह्म की मीमांसा), धर्मशास्त्र (मन्वादि प्रणीत स्मृतियाँ-धर्म

संहिता), अङ्ग (शिक्षा, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, कल्प, ज्योतिष और वेद (ऋक्, साम, यजुः अथर्व), ये विद्या पुरुषार्थ साधन ज्ञान) और धर्म के १४ स्थान हैं।

भगवान् में विश्वास हो इसलिये हमारे यहाँ वेद, शास्त्र, इतिहास, पुराण ये सब साहित्य हैं। इस घोर कलिकाल में जब कि विधर्मियों द्वारा हमारे हजारों लाखों ग्रन्थ नष्ट कर दिये गये, फिर भी इतने साहित्य हमारे पास हैं जितने अन्य सब मजहबों के पास मिलाकर नहीं हैं।

चारों वेदों के एक लाख मन्त्र हैं। उन्हीं के अनुसार ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् ग्रन्थ मान्य हैं। ग्यारह सौ इक्कीस वेद की शाखायें हैं। १०१ यजुर्वेद की, ९ अथर्ववेद की, २१ ऋग्वेद की और १००० सामवेद की।

'एकैकस्यास्तु शाखाया एकैकोपनिषन्मता'

(मुक्तिकोपनिषत् १-१४)

इतनी ही उपनिषदें होनी चाहिए। मोतीलाल-बनारसीदास ने 'उपनिषत्सग्रह' प्रकाशित किया है, जिसमें १२०+६८ =१८८ उपनिषदें हैं। फिर वेद के छः अङ्ग हैं, 'कल्पो, व्याकरणं, शिक्षा, निरुक्त, ज्योतिषं छन्द एतानि षडङ्गानि'

(सीतोपनिषद्)

'शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छन्द' ये वेद के छः अङ्ग हैं।

प्राचीन और नव्यव्याकरण के ही अनेकों ग्रन्थ हैं। प्राचीन और नव्यन्याय के अनेकों ग्रन्थ हैं। नव्यन्याय में पूर्व

पक्ष, व्याप्ति, उत्तरपक्ष व्याप्ति, फिर विविध क्रोड़पत्र बहुत विस्तार है। न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, पूर्व मीमांसा और उत्तर मीमांसा ये छः दर्शन 'उपांग' रूप हैं।

'इतिहासपुराणाख्यमुपांगं च प्रकीर्तितम्'

(सीतोपनि०)

रामायण-महाभारत ये इतिहास हैं। सवा लाख श्लोकों वाला महाभारत मद्रास से प्रकाशित हुआ है। 'एक लाख श्लोकों का महाभारत है' यह तो प्रसिद्ध ही है। चौबीस हजार श्लोकों का वाल्मीकि-रामायण है। 'आनन्द, अद्भुत' आदि पचास रामायण हैं। स्कन्द पुराण, पद्म, विष्णु, भागवत आदि अठारह पुराण हैं। इनमें ४ लाख श्लोक हैं—

एवं पुराणसंदोहश्चतुर्लक्ष उदाहृतः।

(श्रीमद्भागवत १२-१३-८)

ब्रह्मपुराण में १० हजार, पद्मपुराण में ५५ हजार, विष्णुपुराण में २३ हजार, शिवपुराण में २४ हजार, भागवत में १८ हजार, नारदपुराण में २५ हजार, मार्कण्डेयपुराण में ९ हजार, अग्निपुराण में १५ हजार ४००, भविष्यपुराण में १४ हजार ५००, ब्रह्मवैवर्तपुराण में १८ हजार, लिंगपुराण में ११ हजार, बराहपुराण में २४ हजार, स्कन्दपुराण में ८१ हजार १००, वामनपुराण में १० हजार, कर्मपुराण में १७ हजार, मत्स्यपुराण में १४ हजार, गरुडपुराण में १९ हजार और ब्रह्माण्डपुराण में १२ हजार श्लोक हैं। पुराण,

महापुराण और उपपुराण तो मिलते ही हैं, नेपाल में अतिपुराण भी उपलब्ध हैं।

'वास्तुवेदो धनुर्वेदो गान्धर्वश्च तथा मुने।
आयुर्वेदश्च पञ्चैते उपवेदाः प्रकीर्तिताः॥'

(सीतोपनिषद्)

वास्तुवेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद और आयुर्वेद—ये पाँच उपवेद हैं। आज भी चरक, सुश्रुत, वाग्भट्ट आदि आयुर्वेद के अनेकों ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। मनु, याज्ञवल्क्य, पराशर आदि अनेकों स्मृतियाँ हैं। निर्णयसिन्धु, धर्मसिन्धु आदि धर्मग्रन्थ हैं। इनसे सम्बन्धित निबन्ध ग्रन्थ भी पर्याप्त हैं। कामशास्त्र, अर्थशास्त्र, नीतिशास्त्र का बहुत विस्तार है। इतना साहित्य तो तब है जब कि आपके बगल में उज्जैन है, वहाँ मुसलमान बादशाहों और उनकी बेगमों के नहाने के लिये सालों तक हमारे ग्रन्थों को जला-जलाकर पानी गरम किया गया। उस स्थान को हमने जाकर अपनी आँखों से देखा है। अब हमें पता नहीं कि आजकल के राजनैतिक नेता और मुसलमानों के चरण चुम्बन कर स्वयं को गौरवान्वित समझने वाली हमारी सरकार के लोगों ने उस स्थान को रहने दिया था नहीं?

तो कहने का अभिप्राय यह कि इन सब ग्रन्थों में परम्परा से और साक्षात् भगवान् का ही निरूपण है, भगवत्प्राप्ति के उपायों का ही वर्णन है। कहा भी है—

वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा।
आदावन्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते॥

(कल्किपुराण ३-२१-३८)

वेदे रामायणे पुण्ये भारते भरतर्षभ।
आदौ चान्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते ।

(महाभा० १८-६-२३)

(७) अवतारवाद का उपक्रम और माहात्म्य

वेद-रामायण-महाभारत-पुराणों में भगवान् के सगुण-निर्गुण, साकार-निराकार दोनों रूपों का वर्णन है। निर्गुण, निराकार, निर्विकार, अखण्ड, अच्छेद्य, अभेद्य, अलक्ष्य, अचिन्त्य, अव्यय, अव्यपदेश्य भगवान् को जानना बड़ा कठिन है। जिसमें कोई गुण है, आकार है, उसको जान सकते हैं। जिसमें कोई गुण ही नहीं है, उसको कैसे जान सकते हैं ? इसी तरह जिसका कोई रूप हो उस वस्तु को हम जान सकते हैं। बिना रूप की वस्तु को कोई कैसे जान सकता है ? भगवान् में न रूप है, न रस है, न गन्ध है, न स्पर्श है और न शब्द ही है। ऐसे भगवान् को जानना बहुत कठिन है। स्वयं भगवान् गीता में कहते हैं—

"मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥"

(भगवद्गीता ७-३)

भगवान् के अनादि-अनन्त-अव्यपदेश्य निर्गुण निराकार स्वरूप को हजारों-लाखो-करोड़ों वर्षों तक युग-युगान्तरों जन्म-जन्मान्तरों, कल्प-कल्पान्तरों तक तपस्या करके यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि रूप अष्टाङ्गयोग का अनुष्ठान करके, श्रवण, मनन,

निदिध्यासन करके जानना भी दुर्गम है। ऐसी स्थिति में यदि भगवान् का स्वरूप ऐसा ही रहे तो फिर प्राणियों का कल्याण कहाँ से हो ? इसलिये भगवान् ने समस्त संसार के जीवों का कल्याण करने के लिये स्वयं अपने अज्ञेय तत्त्व को स्वरूप को ऐसा बना दिया कि साधारण से साधारण व्यक्ति भी सुगमता पूर्वक जानकर आनन्दित हो सके और सद्गति लाभ कर सके।

देखो बादल या मेघ में पानी तो है। पानी न हो तो वर्षा कैसे हो ? पर उसमें पानी का न तो कोई आकार दिखाई देता है और न गीलाकरना, प्यास बुझाना मैल हटाना आदि कोई गुण ही। हवाई जहाज बादलों के ऊपर चलता है। बादल पहाड़ों पर विश्राम करता है। कभी बादल को चाट के देखो क्या प्यास बुता सकते हो ? नहीं। बादल को ही मेघ कहते है। हमारे एक कवि ने तो मेघ को दूत बनाकर भेजा है। उस काव्य का नाम है 'मेघदूत' तो बादल में पानी है, पर कैसा पानी है ? निर्गुण-निराकार। वही पानी पूर्वी हवा और पश्चिमी हवा दोनों के टकराने से सगुण-साकार होकर के ऐसा बरसता है कि आँखों से देख लो, वस्त्र धो लो, नहा लो, मुँह ऊपर की ओर करके प्यास बुता लो। यह तो जल का उदाहरण दिया। ऐसे समझ लो यह सारा संसार पाँच भूतों का बना है। पाँचों भूत ही निर्गुण-निराकार से सगुण-साकार होते हैं। जो लोग कहते हैं कि पत्थर की मूर्ति में कहाँ से भगवान् आ

गया ? राम भगवान् कहाँ से आये ? कृष्ण भगवान् कहाँ से आये ? निर्गुण-निराकार या सगुण-निराकार भगवान् सगुण-साकार कैसे हो गया ? वे सब नासमझी की बातें करते हैं। ऐसा कहने वालों के पास न कोई युक्ति है, न तर्क, न प्रमाण ही।

देखो, सगुण-साकार भगवान् के प्रतिपादक सनातन-धर्म की महिमा। कहाँ तो सत्ययुग, त्रेता और द्वापर में जन्म-जन्मान्तरों तक तपस्या करके भी ऋषि-मुनि भगवान् को जानने में असमर्थ और कहाँ इस घोर कलियुग में भी सनातन धर्म के मार्ग का आलम्बन ले करके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ही नहीं शूद्र, स्त्री और अन्त्यज भी भगवान् को प्राप्त कर चुके हैं। धन्नाजाट, नन्दानाई, करमाबाई, मीराबाई, चेता चमार और सदना कसाई ये सब संसार से तर गये हैं।

महाभारत, रामायण, भागवत आदि की घटना तो सतयुग, त्रेता और द्वापर युग की हैं, पर मीराबाई, करमाबाई आदि की घटनाएँ तो ४००-५०० वर्ष ज्यादे-से-ज्यादे पुरानी हैं।

एकबार हम पूना गये। उस दिन संत तुकाराम की जयन्ती थी। हम समझते हैं कि पूना में भगवान् को मानने वाले आस्तिकों की अपेक्षा भगवान् को न मानने वाले नास्तिकों की संख्या अधिक है। पर संत तुकाराम की जयन्ती सम्पूर्ण पूना में मनायी गयी। बच्चा-बच्चा यही कहता था कि सशरीर तुकाराम स्वर्ग गये। स्वर्ग से इन्द्र का विमान उन्हें

लेने आया और वे उसी शरीर से स्वर्ग गये। यह किसकी महिमा ! भगवत्स्मरण की महिमा, भगवन्नाम की महिमा। भगवन्नाम का निरन्तर जप करने से संत तुकाराम सदेह स्वर्ग (भगवद्धाम) गये।

"हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम्।
(राम नामैव नामैव नामैव मम जीवनम्॥)
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥"

(नारद पुराण पूर्व ४१-११५)
(स्कन्द पुराण उत्तर० ५-५०, ५०½)

कलियुग केवल नाम अधारा।
सुमिरि सुमिरि नर उतरहिं पारा॥

(रामचरितमानस)

श्रीराम जय राम जय जय राम।
श्रीराम जय राम जय जय राम॥

—०—

સમરીતિર્હિતોજા: પરકૃષ્ણ સનાતન: |
જયનાજ્જાનકીનાથો વેદવેદ્યો મહામતિ: ||
ankurnagpal108@gmail.com

६—भगवद्वतार और उसका प्रयोजन

(१) सगुण साकार मानने पर ही भगवान् सर्वज्ञ और सर्व शक्तिमान्

"भगवान् सर्वज्ञ हैं, अर्थात् सब कुछ जानते हैं। सर्व-शक्तिमान् हैं, अर्थात् सब प्रकार की शक्ति से सम्पन्न हैं।" भगवान् की सत्ता मानने वाले जितने भी वादी हैं, सभी ऐसा मानते हैं। ऐसी कोई वस्तु नहीं, जिसका ज्ञान भगवान् को न हो और ऐसी कोई शक्ति नहीं, जो भगवान् में न हो। ऐसा क्यों? इसलिये कि अल्पज्ञ, अल्पशक्तिमान् तो जीव भी है, पर वह सर्वस्रष्टा, सर्वपालक, सर्वसंहर्ता नहीं। सर्वस्रष्टा, सर्वपालक और सर्वसंहर्ता तो भगवान् ही हो सकते हैं, कोई जीव नहीं। यदि भगवान् को हम निर्गुण-निराकार ही मानें, सगुण-साकार न मानें तब तो भगवान् न सर्वज्ञ कहला सकते हैं और न सर्वशक्तिमान् ही। ऐसा स्वीकार करने पर तो भगवान् की भगवत्ता का ही लोप हो जाय? (क्योंकि) ऐसा मानने पर यह सिद्ध होगा कि भगवान् निराकार से साकार बनना नहीं जानते, निराकार से साकार नहीं बन सकते। इसी तरह, भगवान् निर्गुण से सगुण बनना नहीं जानते और निर्गुण से सगुण नहीं बन सकते। इस तरह, जब निराकार से साकार और निर्गुण से सगुण बनना भगवान् नहीं जानते

तब सर्वज्ञ कैसे? फिर सर्वशक्तिमान् कैसे? ऐसा मानने पर भगवान् में एक ज्ञान और एक शक्ति की कमी सिद्ध होगी। सर्वज्ञता और सर्वशक्तिमत्ता के असिद्ध होते ही भगवान् की भगवत्ता ही असिद्ध हो जायगी। भगवत्ता के बिना भगवान् ही असिद्ध होंगे। ऐसी स्थिति में 'भगवान् जहाँ निर्गुण-निराकार हैं, वहाँ सगुण-साकार भी' ऐसा मानना आवश्यक है।

हम लोग ऐसा मानते हैं कि निर्गुण-निराकार-परात्पर-परब्रह्म-प्रभु-भूतनाथ-विश्वनाथ-सर्वदुःख प्रमोष शंकर के रूप में अवतरित होते हैं। वही चतुर्भुज श्रीविष्णु के रूप में प्रकट होते हैं। वही मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, बुद्ध और कल्कि के रूप में अवतरित होते हैं। निर्गुण-निराकार परात्पर परब्रह्म प्रभु ही राघवेन्द्र मर्यादापुरुषोत्तम दशरथनन्दन कौशल्यानन्दन श्रीरामचन्द्र और यदुनन्दन व्रजेन्द्रनन्दन परमानन्दकन्द मदनमोहन लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्णचन्द्र के रूप अवतरित होते हैं।

भगवान् निर्गुण-निराकार होते हुए भी सगुण-निराकार वैसे ही हो जाते हैं, जैसे 'माचिस'-'लाइटर' में रहने वाली निर्गुण-निराकार अग्नि सगुण-साकार बन कर दीख जाती है। निर्गुण-निराकार भगवान् सगुण-साकार वैसे ही हो जाते हैं, जैसे निर्गु-निराकार आग दाहक-प्रकाशक हो सगुण-साकार आग बनकर आती है। निर्गुण-निराकार आकाश सर्वत्र है पर उसमें आप जल नहीं भर सकते, सो नहीं सकते उड़ान नहीं

भर सकते ; जब वही घट के योग से सगुण निराकार घटाकाश बन जाता है तब आप उसमें जल भर सकते हैं, मठ के योग से सगुण निराकार मठाकाश बन जाता है तब आप उसमें सो सकते हैं और हेलिकोप्टर, वायुयान तथा राकेट के योग से जब वह सगुण-साकार हो जाता है, तब आप उसमें उड़ान भर सकते हैं।

जिस प्रकार निर्गुण-निराकार बिजली उपाधि-योग से सगुणनिराकार और सगुण साकार हो जाती है, उसी प्रकार निर्गुण-निराकार भगवान् उपाधियोग से सगुण-निराकार और सगुण साकार हो जाते हैं। श्रुतियाँ भगवान् को 'निर्गुणं निष्क्रियं सूक्ष्मं' (अध्यात्मोपनिषद् ६२) 'निर्गुण' कहती हैं। हमारे शैवाचार्य-वैष्णवाचार्य आदि ऐसा मानते हैं कि प्राकृत गुणगणहीन होने के कारण भगवान् निर्गुण हैं और अचिन्त्य अनन्त-दिव्यकल्याणगुणगणनिलय होने के कारण भगवान् सगुण हैं। स्वामी दयानन्द ऐसा मानते हैं कि हीन या खराब गुणों से रहित होने के कारण भगवान् निर्गुण हैं। लेकिन खराब या हीन भावों को 'गुण' क्यों कहें, वे तो दोष ही हैं। ऐसी स्थिति में भगवान् निर्गुण कहाँ हुए ? यहाँ भी यही समझना चाहिये कि जैसे भगवान् में सगुण होने का ज्ञान और सामर्थ्य नहीं तो भगवान् सर्वज्ञ-सर्वशक्तिमान् नहीं ; सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् नहीं हो तो भगवान् 'भगवान्' ही नहीं, वैसे ही यदि भगवान् में दिव्य या उत्तमोत्तम गुण हैं ही तो भगवान् निर्गुण नहीं। जैसे एक भी घट (घड़ा) रहे तो

पृथ्वी निर्घट (घटरहित) नहीं, वैसे ही एक भी गुण भगवान् में रहे तो भगवान् निर्गुण नहीं। 'अमुक-अमुक गुण भगवान् में नहीं हैं, इसलिये भगवान् निर्गुण बन जायेंगे', यह बात दार्शनिक-दृष्टि से संगत नहीं। साथ ही गुण के बिना भगवान् निर्गुण भी कैसे सिद्ध होंगे ? 'गुण जिससे निकल गये या जो गुणों से निकल गया वह निर्गुण' ऐसा मानने पर भगवान् सगुण सिद्ध होते हैं। कोई मकान में था तब उससे निकल गया, यदि मकान में था ही नहीं तब निकला कैसे ? भगवान् में गुण था तब निकला, था ही नहीं तो निकला कैसे ? ऐसी स्थिति में भगवान् को सगुण मानना आवश्यक है।

व्यावहारिक-सत्ता गुणों की मान लेने पर और वास्तविक सत्ता भगवान् की मान लेने पर दोनों मतों का समन्वय हो जाता है। गुणगणों के परम-आश्रय अधिष्ठान होने के कारण सगुण होते हुए भी भगवान् वस्तुतः निर्गुण हैं। गुणगण शेष हैं और भगवान् शेषी/शेष के बिना भी शेषी रह सकता है, पर शेषी के बिना शेष नहीं।

'मां भजन्ति गुणाः सर्वे निर्गुणं निरपेक्षकम् ।'

(भागवत ११-१३-४०)

यही स्थिति आकार की भी है। 'आकार जिससे निकल गया या जो आकार से निकल गया, वह निराकार' ऐसा मानने पर आकार का अस्तित्व सिद्ध होता है और उस आकार के योग से भगवान् साकार सिद्ध होते हैं। साथ ही जब तक एक भी आकार है तब तक भगवान् निराकार कैसे ? ऐसी

स्थिति में 'लीला-पूर्वक भगवान दिव्यातिदिव्य गुणगणों को स्वीकार करते हैं, स्वतः निर्गुण हैं', ऐसा मानने पर दोनों मतों का समन्वय हो जाता है।

(२) अवतार-रहस्य

कितनी सरस बात है कि निर्गुण ब्रह्म को गुण भजते हैं। दिव्यातिदिव्य गुणगणों ने तपस्या की, मुकुट-कुण्डल-किरीट आदि आभूषणों ने तपस्या की। जन्म-जन्मान्तर, युग-युगान्तर, कल्प-कल्पान्तर तक तप करने पर प्रभु प्रसन्न हो गये। बोले—'वरदान माँगो !'

गुणों ने, आभूषणों ने कहा—'प्रभो ! हमको आप अंगीकार कर लो, हमें धारण कर लो। यदि आप हमें स्वीकार नहीं करोगे तो हम गुण कहने लायक ही कहाँ रह जायेंगे ? हम तो दोष ही बने रहेंगे। यदि आप हमें स्वीकार नहीं करोगे तो हम आभूषण कहने लायक कहाँ रहेंगे, भूषण नहीं, दूषण ही बने रहेंगे।''

भगवान् ने गुणगणों को, आभूषणों को स्वीकार किया। तभी तो पुराणों में कहा गया है—

सच्चिदानन्द-परात्पर-परब्रह्म-श्रीकृष्णचन्द्र-परमानन्दकन्द के रूप में प्रकट हुआ। वह दिव्य शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध के रूप में प्रकट होकर भक्तों की इन्द्रियों को आह्लादित कर रहा है। इन्द्रियाँ भगवान् का अनुभव कर रही हैं—

'मयैव वृन्दावन गोचरेण' (भागवत ११-१२-११) वृन्दावने गाः इन्द्रियाणि चारयति'

प्रभु इतने सुन्दर हैं, इतने सुन्दर हैं कि भूषण (गहने) उनकी सुन्दरता को ढकते हैं। अन्यत्र तो भूषण अंग को अलंकृत सुशोभित करते हैं, पर यहाँ तो भगवान् के मंगलमय अंग ही अलंकारों को अलंकृत सुशोभित करते हैं। भगवान् श्री राघवेन्द्र रामभद्र और श्यामसुन्दर परमानन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्र के सच्चिदानन्दमय श्रीविग्रह ही भूषणों को भूषित करते हैं—

'परं पदं भूषणभूषणाङ्गम्' (भागवत ३-२-१२) भूषणानां भूषणानि अंगानि यस्य सः'

भागवत में कहा गया है कि 'सम्पूर्ण लोकों के वन्दनीय भगवान् के गले का चिन्तन करे, जो मानो कौस्तुभमणि को भी सुशोभित करने के लिये ही उसे धारण करता है'—

'कण्ठञ्च कौस्तुभमणेरधिभूषणार्थम्'

(भागवत ३-२८-२६)

इस तरह भगवान् को किसी की अपेक्षा नहीं, किन्तु भगवान् गुण-भूषणादि की तपस्या पर रीझकर उन्हें स्वीकार कर धन्य धन्य करते हैं। हमलोग गहने कपड़े क्यों पहनते हैं ? हमारा शरीर सुन्दर लगे, हमारे शरीर में सुन्दरता आ जाय, हमारा शरीर अलंकृत-विभूषित हो जाय। लेकिन अनन्त कोटि कन्दर्प-कामदेव को लजाने वाली सुन्दरता भगवान् के शरीर में पहले से है। ऐसी स्थिति में भूषणों को भी भूषित करने वाले भगवान् का आश्रय लेकर गुण भी गुण बन जाते हैं।

इन सब दृष्टियों से न तो ऐसा ही आग्रह करना चाहिये कि भगवान् दीखते नहीं तो उन्हें मानें ही क्यों ? आपको भूख लगती है, भूख के मारे आज मेरे पेट में चूहे कूदते हैं, ऐसा आप कहते हैं, पर क्या उस निराकार भूख को आँखों से देखकर आप मानते हैं ? आपको प्यास लगती है, "प्यास के मारे जान निकली जा रही है" ऐसा आप कहते हैं, पर क्या प्यास को आँखों से देखकर आप मानते हैं ? साथ ही क्या निर्गुण निराकार अन्न से आप भूख मिटाते हैं या निर्गुण निराकार जल से आप प्यास बुताते हैं।

इस तरह भगवान् जहाँ निर्गुण-निराकार हैं, वहाँ सगुण-निराकार और सगुण-साकार भी। संसार में पृथ्वी, जल, तेज ये सब वस्तुएँ निर्गुण-निराकार, सगुण निराकार और सगुण-साकार तीनों प्रकार के हैं। ऐसे ही भगवान् भी निर्गुण-निराकार, सगुण-निराकार और सगुण-साकार तीनों प्रकार के हैं।

(३) अवतार प्रयोजन

अब प्रश्न उठता है कि जीव जब जन्म लेता है तब वह सगुण साकार माना जाता है, यदि भगवान् भी स्वयं को सगुण-साकार करने के लिये जन्म लें तो जीव में और भगवान् में अन्तर ही क्या रह जायगा ? इसका उत्तर स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण गीता में अर्जुन को देते हैं—

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि नत्वं वेत्थ परंतप॥
अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया॥

(भगवद्गीता ४-५,६)

"हे अर्जुन ! मेरे अनेक जन्म हुए और तेरे भी अनेक जन्म हुए। तुझमें और मुझमें यही फर्क है कि तू जीव है—नर है और मैं नारायण हूँ, इसलिये मैं अपने सम्पूर्ण जन्मों को जानता हूँ। तू अपने जन्मों को नहीं जानता ; तू अल्पज्ञ है और मैं सर्वज्ञ हूँ। यदि कहो कि महाराज ! कैसे मान लें कि आपके भी बहुत जन्म हुए ! मेरे जन्म हो सकते हैं, क्योंकि मैं जीव हूँ ; लेकिन आप तो अनादि-अनन्त साक्षात्-परब्रह्म,परमात्मा हैं, आपका जन्म कैसा ! तो सुनो ! मैं अज हूँ, मेरा जन्म वास्तव में नहीं होता। मैं अव्यय हूँ, न तो मेरा कभी नाश ही होता है। अर्थात् न तो मैं पैदा ही होता हूँ और न मरता ही हूँ। जीवों का जन्म और मरण भी वस्तुतः औपाधिक है, वास्तविक नहीं। मेरी सत्त्व, रज-तमोगुणात्मिका प्रकृति भास्वती भास्वती माया है। उसको अपने वश में कर उसी को अधिष्ठान-आश्रय (निमित्त) बनाकर मैं अपनी माया से अवतरित होता हूँ। प्रकृति परवश होकर-जीवों की तरह किसी अन्य की माया से नियन्त्रित होकर पैदा नहीं होता।"

श्रीभगवान् का जैसा रूप है, वैसा रूप संसार में किसी का नहीं। जनकनन्दिनी जानकी भगवती, रामचन्द्र राघवेन्द्र भगवान् और लखन (लक्ष्मण) लाल के साथ आ रहीं थीं। चित्रकूट के आस-पास की ग्राम वधूटियाँ इकट्ठी हो गयीं। उन्होंने प्रश्न किया—

राजकुँअर दोउ सहज सलोने।
इनते लहि दुति मरकत सोने॥
श्यामल गौर किशोर वर सुन्दर सुषमा ऐन।
सरद सर्वरीनाथ मुख सरद सरोरुह नैन॥

(रामचरित मानस २-११६ ८)

कोटि मनोज लजावनि हारे।
सुमुखि कहहु को अहहि तुम्हारे॥

(रामचरित मानस २-११७-१)

करोड़ों काम देवों के रूप को भी लजाने वाला भगवान् का रूप है। ऐसा रूप कहाँ से आया ? आपका हमारा समस्त संसार का ऐसा रूप क्यों नहीं ? इसलिये नहीं है कि आपका, हमारा जो रूप है वह सामान्य पंचभूतों से-पंचमात्राओं से पैदा होता है, लेकिन भगवान् के शरीर का जो रूप है, वह पंचभूतों या पंचतन्मात्राओं से पैदा नहीं होता। भगवान् अपने शरीर को धारण करने के लिये विशुद्ध-सत्त्वात्मिका-लीलाशक्ति से दिव्यातिदिव्य तन्मात्राओं को उत्पन्न करते हैं। उन्हीं से भगवान् अपने दिव्यातिदिव्य श्रीविग्रह को व्यक्त

करते हैं। उसमें इतना आकर्षण होता है कि ज्ञानी का मन भी उसकी ओर खिंच जाता है, संसार के सब रूपों की ओर से वह अलग हो जाता है—बच जाता है। अब चाहे उर्वशी, तिलोत्तमा, रम्भा और मेनका ही दिव्यातिदिव्य वस्त्राभूषणों और अलङ्कारों से सुसज्जित-अलंकृत होकर कितने ही सुगन्धित द्रव्यों को अपने शरीर में अनुलिप्त कर सामने क्यों न आवें, लेकिन ज्ञानी उसकी ओर पीठ दे देगा, तनिक भी आकृष्ट नहीं होगा। भगवान् का सौन्दर्य-माधुर्य जैसा है, वैसा सौन्दर्य-माधुर्य अन्यत्र कहीं देखने को मिलता भी नहीं। तभी तो जनक जैसे ज्ञानी जिनका मन असम्प्रज्ञात समाधि में, निर्गुण ब्रह्म में चौबीस घण्टे लगा रहता है, कौशल्यानन्दन दशरथनन्दन श्रीराम-लक्ष्मण को देखते ही सहज विराग रूप उनका मन भी अति अनुरागी बन जाता है, बरबस समाधि सुख का परित्याग कर उनकी रूप-माधुरी में निमग्न हो जाता है। वे कहते हैं कि ब्रह्म के सिवाय मेरे मन में संसार का कोई पदार्थ प्रवेश नहीं कर सकता ; लेकिन क्या करूँ ? इनके रूप का अवलोकन कर निर्गुण-ब्रह्म का बरबस त्याग कर इनकी मधुर-मनोहर कोटि मनोज लजावनिहारी मूर्ति में मन जाकर रम गया। उन्हें देखते ही मन में इनके प्रति सामान्य राग नहीं अति अनुराग उत्पन्न हो गया—

सहज विराग रूप मन मोरा।
थकित होत जिमि चन्द्र चकोरा॥

तातें प्रभु पूछउँ सति भाऊ।
कहहु नाथ जनि करहु दुराऊ॥
इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा।
बरबस ब्रह्म सुखहिं मन त्यागा।

(रामचरित मानस १-२१६-३-५)

श्रीरामजी का रूप सभी को आकृष्ट करता है—

रामचन्द्र मुखचन्द छवि लोचन चारु चकोर।
करत पान सादर सकल प्रेम प्रमोद न थोर॥

(रामचरित मानस १,३२१)

आजकल संसार में रूप का विषय सबसे अधिक मोहक-आकर्षक है। इत्र तेल-फुलेल, स्नो, लवंडर, पाउडर-क्रीम, लोशन से शरीर को सजाने वाले आजकल के लोगों को यह पता ही नहीं कि रम्भा, तिलोत्तमा आदि दिव्याङ्गनाओं का भी कोई रूप होगा? नियम यह है कि स्त्रियाँ स्त्रियों के रूप पर मोहित नहीं होतीं—

मोह न नारि-नारि के रूपा। पन्नगारि यह चरित अनूपा॥

(रामचरित मानस ७-११६-२)

पर भगवती सीता के रूप को देखकर नर-नारी सभी मुग्ध होते हैं—

रंग भूमि जब सिय पगुधारी।
देखि रूप मोहे नरनारी॥

रामरूप अस सिय छबि देखें।
नर नारिन्ह परिहरीं निमेषें॥

(रामचरित मानस १-२४८-४, २४६-१)

क्यों न हो?

जौं छबि सुधा पयोनिधि होई। परम रूपमय कच्छप सोई॥
सोभा रजु मंदरु सिंगारू। मथै पानि कर पङ्कज मारू॥
एहि विधि उपजै लच्छि जब सुन्दरता सुख मूल।
तदपि संकोच समेत कवि कहहिं सीय सम तूल॥

(रामचरितमानस १-२४७)

"यदि छबिरूप अमृत का समुद्र हो, परम रूपमय कच्छप हो, शोभारूप रस्सी हो, शृङ्गार रस पर्वत हो और उस छबि के समुद्र को स्वयं कामदेव अपने ही कर-कमल से मथे। इस प्रकार का सौन्दर्य होने से जब सुन्दरता और सुख की मूल लक्ष्मी उत्पन्न हो तो भी कवि लोग उसे बहुत ही संकोच के साथ सीताजी के समान कहेंगे।"

जब द्रौपदी ने राजा विराट् की पत्नी सुदेष्णा के पूछने पर 'मैं सैरन्ध्री (दासी) का काम करना चाहती हूँ और इसलिए यहाँ आयी हूँ' ऐसा कहा तब राजरानी सुदेष्णा ने उससे कहा—

नैवं रूपा भवन्त्येव यथा वदसि भामिनि।
प्रेषयन्तीव दासीश्च दासांश्चं विविधान् बहून्॥

स्त्रियो राजकुले याश्च याश्चेमा मम वेश्मनि।
प्रसक्तास्त्वां निरीक्षन्ते पुमांसं कं न मोहयेः।
वृक्षांश्चावस्थितान् पश्य य इमे मम वेश्मनि।
तेऽपि त्वां संनमन्तीव पुमांसं कं न मोहयेः॥

(महाभारत विराटपर्व ६-६-२३-२४)

"भामिनि ! तुम जैसा कह रही हो, उस पर विश्वास नहीं होता ; क्योंकि तुम्हारी जैसी रूपवती स्त्रियाँ सैरन्ध्री (दासी) नहीं हुआ करतीं। तुम तो बहुत-सी दासियों और नाना प्रकार के बहुतेरे दासों को आज्ञा देने वाली रानी-जैसी जान पड़ती हो।"

"इस राजकुल में जितनी स्त्रियाँ हैं तथा मेरे महल में भी जो ये सुन्दरियाँ हैं, वे सब एक टक तुम्हारी ओर निहार रहीं हैं, फिर पुरुष कौन-ऐसा होगा, जिसे तुम मोहित न कर सको ?"

"देखो मेरे भवन में जो ये वृक्ष खड़े हैं, वे भी तुम्हें देखने के लिये झुके से पड़ते हैं, फिर पुरुष कौन ऐसा होगा, जिसे तुम मोहित न कर लो ?"

द्रौपदी ने कहा—"आप चिन्ता न करें। किसी महान् शक्तिशाली गन्धर्वराज के पाँच (जय, जयन्त, विजय, जयत्सेन और जयद्वल) शक्तिशाली तरुण पुत्र मेरे पति हैं। अपने जनों को कह देना मैं किसी पुरुष से सम्भाषण नहीं करूँगी। मेरे ऊपर जिस दिन किसी ने बुरी नजर डाली नहीं कि उसी रात वह 'राम नाम सत्य' हो जायेगा। मेरे पाँचों पति सदा मेरी

रक्षा करते हैं। मैं किसी की जूठन नहीं खाऊँगी और न किसी का पाँव ही दबाऊँगी।"

इसी तरह महाभारत में भीम के सौन्दर्य का भी वर्णन आता है। एक वन में हिडिम्ब नामक राक्षस बड़ा ही क्रूर और मनुष्यों को कच्चा चबा जाने वाला था। जब उसने दूर से कुन्ती सहित पाण्डवों को सोते देखा तो अपनी बहन हिडिम्बा को उन्हें मारकर ले आने की आज्ञा दी। वहाँ पहुँचकर उसने कुन्ती और चार पांडवों को सोते और भीमसेन को जागते देखा। भीमसेन के अप्रतिम रूप को देखकर वह मुग्ध हो गयी। उसने मन-ही-मन उन्हें अपना पति मानकर अत्यन्त सुन्दरी मानवी बनकर अपने क्रूर स्वभाव को छोड़कर भीमसेन के पास पहुँची।

राक्षसी कामयामास रूपेणाप्रतिमं भुवि॥
अयं श्यामो महाबाहुः सिंहस्कन्धोमहाद्युतिः।
कम्बुग्रीवः पुष्कराक्षो भर्ता युक्तो भवेन्मम॥

(महा० आदि० १५१-१७-१८)

जो राक्षसी मनुष्यों को कच्चा चबा जाय, वह मनौती मनाने लग गयी और धर्मराज युधिष्ठिर से कहने लगी, 'यदि तुम्हारे भाई के साथ ब्याह न हुआ तो मैं मर जाऊँगी।

संसार में किसी भी स्त्री-पुरुष का ऐसा रूप है ही नहीं जैसा रूप भगवान् का है। जब ज्ञानी भगवान् के रूप में

आसक्त होगा, तब उसका मन किसी भी रूप को देखने जायगा तो उसके सामने भगवान् का रूप आ जायगा, इसलिये वह कहीं फँसेगा ही नहीं।

काम क्रोध-लोभ-मोह जीव के शत्रु हैं, लेकिन ये सब मित्र बन सकते हैं। संसार के विषयों से हटा करके भगवान् के प्रति कामादि विकारों को अर्पित करें तो चौबीसों घण्टे भगवान् का ही चिन्तन होगा। कल्याण हो जायगा। वैसे काम क्रोधादि जीव के भयङ्कर शत्रु हैं, पर इनके विषय यदि भगवान् बन जाँय तो उद्धार हो जाय। ऐसा क्यों ? 'विषय' की महिमा के कारण या 'प्रमेय-बल' की मुख्यता के कारण –

भगवति प्रमेयबलमेव मुख्यम् न प्रमाणबलम्

(सुबोधिनी १०-८४-२)

गोप्यः कामाद् भयात्कंसो द्वेषाच्चैद्यादयो नृपाः।
सम्बन्धाद् वृष्णयः स्नेहाद्यूयं भक्त्या वयं विभो॥

(श्रीमद्भागवत ७-१-३०)

"महाराज ! गोपियों ने भगवान् से मिलन के तीव्रकाम अर्थात् प्रेम से, कंस ने भय से, शिशुपाल-दन्तवक्त्र आदि राजाओं ने द्वेष से, यदुवंशियों ने परिवार के सम्बन्ध से, तुम लोगों ने स्नेह से और हमलोगों ने भक्ति से अपने मन को भगवान् में लगाया है।"

अरे संसारी पुरुषो ! जन्म-मरण के बन्धन से छूटना चाहते

हो तो भगवान् के दिव्यातिदिव्य जन्म और कर्म का चिन्तन करोगे तो जन्म-कर्म के बन्धन से छूट जाओगे। क्यों ? इसलिये कि भगवान् के जन्म और कर्म अनादि और अनन्त हैं, इस वास्ते उनका चिंतन करते करते तुम भी अनादि और अनन्त साक्षात्-भगवत् स्वरूप बन जाओगे।

हमारे आपके जन्म-कर्म बन्धन के कारण हैं, भगवान् के जन्म कर्म बन्धन के कारण नहीं। तभी तो कहा काम, क्रोध, भय, स्नेह, ऐक्य, सख्य किसी भी भाव से सही भगवान् में मन को लगा कर प्राणी संसार से छूट कर भगवत्स्वरूप हो जाता है। निर्गुण, निराकार, अव्यय, अप्रमेय भगवान् प्राणियों के कल्याण के लिये ही श्रीकृष्ण आदि रूप में अवतरित होते हैं। उनके मंगलमय श्री अंग की सुन्दरता, सरसता, मधुरता हठात् प्राणियों के मन को खींच लेती हैं, पाषाण तथा वज्र के तुल्य कठोर-हृदय को भी पिघलाकर नवनीत के समान कोमल एवं सरस बना देती है। सौन्दर्य-माधुर्य, सौरस्य-सौगन्ध-सुधा जलनिधि श्री-अंग में इन्द्रियों और मन की स्वाभाविक आसक्ति हो जाती है। अमृतमय मुखचन्द्र में उन्हें मन और इन्द्रियों की ऐसी आसक्ति हो जाती है कि वे लौटाना तो भूल ही जाते हैं। जो मन विषयों से एक क्षण के लिये भी अलग नहीं हो सकता वही भगवान् में आसक्त होकर विषयों को भूल जाता है। ऐसे परम-मधुर मनोहर भगवान् में प्रीति का होना स्वाभाविक ही है। कुन्ती देवी

कहती है — 'हे प्रभो आप अमलात्मा परमहंस मुनीन्द्रों को भक्तियोग देकर उन्हें श्री परमहंस बनाने के लिये अवतरित होते हैं'—

तथा परमहंसानां मुनीनां अमलात्मनाम्।
भक्तियोगविधानार्थं कथं पश्येम हि स्त्रियः॥

(भागवत १-८-२०)

परमहंस शुकदेवजी कहते हैं —

नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृपः।
अव्ययस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः॥

(भागवत १०-१६-२४)

'राजन् ! भगवान् निर्गुण, अप्रमेय होते हुए भी अचिन्त्य अनन्त दिव्यातिदिव्य गुणों के एकमात्र आश्रय हैं। उनका अवतार प्राणियों के परम कल्याण के लिये होता है।'

भगवान् के अवतार का यही मुख्य प्रयोजन है, रावणादि का वध मुख्य प्रयोजन नहीं है। सारे संसार को संकल्पमात्र से पैदा करने और संहार करने वाले भगवान् हिरण्यकशिपु, रावणादि को बिना अवतार लिये भी संकल्पमात्र से मार सकते हैं।

भगवान् के ऐसे स्वरूप में मन लग जाय तो समस्त बन्धनों से छूट करके शाश्वत शान्ति, शाश्वत सुख प्राप्त कर लें। जब भगवान् निर्गुण-निराकार ही रहेंगे तो उनके चरणार-

विन्द की शरणागति भी कैसे होगी ? जब भगवान् सगुण-साकार होंगे तभी तो उनके चरणारविन्दों का दर्शन सुलभ होगा और शरणागति सुलभ होगी।

श्रीराम जय राम जय जय राम।
श्रीराम जय राम जय जय राम॥

—०—

સમરીતિર્નંદાતેજા: પરબ્રહ્મ સનાતન:।
જયતાજ્જાનકીનાથો વેદવેદ્યો મહામતિ: ||
ankurnagpal108@gmail.com